परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 19, अंक 1, अप्रैल 2012

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2012
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3 के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बच्चन सिंह, बी-275, अवन्तिका, रोहिणी सेक्टर 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मे. अनिल आफसेट एंड पैकेजिंग प्रा. लि., दिल्ली-110007 में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 19, अंक 1, अप्रैल 2012

विषय सूची

आलेख

फिलिप जी. अल्टबाख
विश्व में शैक्षणिक क्रांति : भारत के लिए निहितार्थ 1

अमित कुमार एवं **अर्चना अग्रवाल**
प्रभावी विद्यालय प्रबंधन हेतु प्रधानाचार्य में अपेक्षित कौशल 19

धर्मराज सिंह एवं **बबिता सिंह**
अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुणों का तुलनात्मक अध्ययन 29

पंकज कुमार दूबे
शिक्षा के संदर्भ में संपूर्ण क्रांति की अवधारणा 47

राकेश राय और **अनीता राय**
पूर्व माध्यमिक स्तर के छात्रों के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन : मॉरीशस एवं भारत के संदर्भ में 57

शोध टिप्पणी / संवाद

नीलिमा सिंह'
लोकतंत्र एवं शिक्षा का अधिकार 65

आर.पी. पाठक एवं **नविता कुमारी**
शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में विभिन्न शिक्षण विधियों की उपादेयता 77

हरीश चन्द्र जोशी
उच्च प्राथमिक विद्यालय में कार्यरत शिक्षकों द्वारा दृश्य-श्रव्य संचार माध्यमों का उपयोग 85

विभा निगम एवं **शालिनी दीक्षित**
पूर्व-प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास पर अभिभावकीय आकांक्षा के प्रभाव का अध्ययन 91

सुनीता मिश्रा एवं **निधि सोलंकी**
विषय वर्ग एवं यौन-भिन्नता के परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थियों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन 107

जितेन्द्र कुमार गोयल
सुविधाभोगी और सुविधावंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों की नैराश्य, आत्मसंप्रत्यय एवं विद्यालय निष्पत्ति का तुलनात्मक अधययन 119

चिंतक और चिंतन

देवेन्द्र सिंह
पाल गुडमैन के चिन्तन की सार्वभौमिक उपादेयता 133

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 19, अंक 1, अप्रैल 2012

विश्व में शैक्षणिक क्रांतिः भारत के लिए निहितार्थ

फिलिप जी. अल्टबाख*

सारांश

दुनियाभर में उच्च शिक्षा का सार्वजनीकरण, वैश्विक जनआधारित अर्थव्यवस्था, निजी उच्च शिक्षा में तीव्र बढ़ोतरी और अनेक देशों में विश्वस्तर के शोध विश्वविद्यालयों की स्थापना दुनियाभर के प्रमुख रुझान हैं। शैक्षणिक क्रांति कैसे काम करती है और विभिन्न देशों में इसका क्या प्रभाव पड़ता है, इसे समझना आवश्यक है। भारत दुनिया का एक विशाल और शिक्षा प्रणाली की दृष्टि से दुनिया का दूसरा बड़ा देश है। इसके बावजूद 21वीं सदी के शैक्षणिक जगत की केंद्रीय शक्तियों से निपटने में यह अनेक देशों से पीछे है।

पिछली सदी के उत्तरार्द्ध में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में जो शैक्षणिक क्रांति देखी गई है वह विस्तार, महत्व तथा विविधता की दृष्टि से अभूतपूर्व रूपांतरण है। इस प्रकार से हो रहे परिवर्तनों और तीव्र प्रक्रिया भले ही यह अभी मझधार में हैं, को समझना कोई आसान काम नहीं है। विगत दिनों में जो विकास देखे गए हैं वे उतने आश्चर्यचकित करने वाले हैं जितने की 19वीं सदी में शोध विश्वविद्यालय के अस्तित्व में आने पर हुआ था। पहले पहल शोध विश्वविद्यालय जर्मनी में खुलने और उसके बार अन्य देशों में खुले। शोध विश्वविद्यालयों ने वास्तव में दुनियाभर में विश्वविद्यालय के स्वरूप और प्रकृति को पूरी तरह बदल दिया। 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध और 21वीं सदी के पूवार्द्ध के शैक्षणिक बदलाव अपने वैश्विक प्रकृति, संख्या और प्रभाव के कारण बहुत व्यापक हैं। हमारी दृष्टि से

* मोनन यूनिवर्सिटी प्रोफेसर और निदेशक, सेंटर फार इंटरनेशनल हायर एजुकेशन, 207 कैम्पीयन हाल, वोस्टन कालेज चेस्टन हिल एम.ए. 02467, अमरीका, इन्होंने उच्च शिक्षा पर व्यापक रूप से लिखा है। इनकी हाल में प्रकाशित पुस्तक है– दि रोड टू एकेडेमिक एक्स एक्सेलेंस : दि मेकिंग आफ वर्ल्ड क्लास रिसर्च यूनिवर्सिटीज सह-संपादक जमील सालमी वर्ल्ड बैंक, ई-मेल : philip.altbach@bc.edu

* यह आलेख फिलिप जी अल्टबाख लीज रोजबर्ग और लौरा ई रम्बले की रिपोर्ट – ट्रेंड्स इन ग्लोबल हायर एजुकेशन : ट्रैकिंग एन एकेडेमिक रिवाल्यूशन पर आधारित है। यह रिपोर्ट यूनेस्को वर्ल्ड कानफरेंस आन हायर एजुकेशन के लिए तैयार किया गया था। पेरिस : यूनेस्को 2009

मौजूदा शैक्षणिक क्रांति के चार मूलभूत और परस्पर संबंधित कारक हैं– जन उच्च शिक्षा, वैश्वीकरण, ज्ञानपरक समाज का विकास और सूचना प्रौद्योगिकी। इन कारकों की वजह से अन्य दूसरे परिवर्तन भी हुए हैं जैसे– निजीक्षेत्र का उदय और निजीकरण, उच्च शिक्षा के प्रतिफल के दबाव सहित जवाबदेही जागरूकता, दूरवर्ती शिक्षा और अन्य दूसरे बदलाव।

21वीं सदी के मौजूदा दौर में दुनियाभर में इस बदलाव का अनुभव किया जा रहा है। उच्च शिक्षा प्रतिस्पर्धात्मक उद्यम बन गई है। अनेक देशों में विद्यार्थियों को विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के लिए कड़ी प्रतियोगिताओं से गुजरना पड़ता है। सभी देशों में चोटी के संस्थानों में प्रवेश पाना बहुत कठिन हो गया है। विश्वविद्यालय भी उच्च प्रतिष्ठा और ग्रेड पाने और सरकारी तथा निजी संसाधन अनुदान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। यद्यपि शैक्षणिक जगत में प्रतिस्पर्धा एक प्रमुख कारक रही है और यह उत्कृष्टता प्रदान करने में सहायक भी हो सकती है। इसके साथ ही यह शैक्षणिक समुदाय मिशन और पारंपरिक मूल्यों की ह्रास में सहायक भी हो सकती है।

सार्वजनीकरण की परिघटना

21वीं सदी में उच्च शिक्षा का केंद्र बिंदु जनसाधारणीकरण (massification)है। पिछले तीस वर्षों के दौरान विश्वभर में उच्च शिक्षा के नामांकन में बेतहासा वृद्धि हुई है। जनसाधारणीकरण का तर्क है कि यह एक अनिवार्य परिघटना और आबादी के एक बढ़ते हिस्से की सामायिक गतिशीलता में बढ़ोतरी उच्च शिक्षा के वित्त पोषण के नए प्रतिमान, अधिकांश देशों में उच्च शिक्षा प्रणाली की बढ़ती विविधता, आमतौर पर शैक्षणिक स्तर का गिरना और अन्य प्रवृतियां इसमें शामिल हैं। अन्य दूसरी प्रवृत्तियों की तरह यहां मुख्य प्रवृत्तियों पर चर्चा की गई है जबकि जनसाधारणीकरण बिल्कुल नया नहीं है। उच्च शिक्षा में हो रही क्रांति के इस 'महत्वपूर्ण चरण' को विभिन्न तरीकों से समझना होगा। प्रथम चरण में उच्च शिक्षा मांग – विस्तृत आधारभूत संरचना की आवश्यकता और भारी संख्या में अध्यापकों की जरूरतों की चुनौतियों का उच्च शिक्षा ने सामना किया। पिछले दशक के दौरान उच्च शिक्षा, व्यवस्था की विविधता के निहितार्थों से लड़ती रही और अभी भी कई सामाजिक वर्ग इसका लाभ उठा नहीं पा रहे हैं और समुचित सुविधाओं से वंचित हैं।

अमरीका पहला देश है जो 1960 में माध्यमिक शिक्षा प्राप्त आयु वर्ग के 40 प्रतिशत आबादी को उच्च शिक्षा में नामांकित किया। यद्यपि कुछ विकासशील देशों में अभी समकक्ष आयुवर्ग के 10 प्रतिशत से कम व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं फिर भी सभी देशों में उच्च

शिक्षा में भागीदारी की दरों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। 1980 के दशक में पश्चिमी यूरोप और जापान में इसमें तेजी से वृद्धि हुई। इसके बाद पूर्वी एशिया और लैटिन अमरीका का स्थान रहा। चीन और भारत में समकक्ष आयुवर्ग की भागीदारी क्रमश: 20 प्रतिशत और 10 प्रतिशत रही है जो मौजूदा दौर में दुनियाभर में सबसे विस्तृत और तीसरी बड़ी शैक्षणिक प्रणालियां हैं। आगामी दशकों में इन दोनों देशों की उच्च शिक्षा प्रणालियों में भारी वृद्धि होगी और दुनिया की नामांकन वृद्धि के आधे तक पहुंच सकती है।

विश्वभर में समकक्ष आयु वर्ग में उच्च शिक्षा में नामांकन 2000 में 19 प्रतिशत था जो 2007 में बढ़कर 26 प्रतिशत पहुंच गया। मध्यम और उच्च आय वाले देशों में यह एक उल्लेखनीय वृद्धि है। विश्वभर में उच्च शिक्षा में 150.6 मिलियन विद्यार्थी हैं। इनमें 2000 में लगभग 53 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। निम्न आय वाले देशों में उच्च शिक्षा नामांकन दर बहुत मामूली सुधार हुआ– 2000 में 5 प्रतिशत से बढ़कर 2007 में 7 प्रतिशत हुआ। लैटिन अमरीका में अभी भी उच्च शिक्षा में नामांकन उच्च आय वाले देशों का आधा है। हालांकि नामांकन वृद्धि हर जगह देखी जा रही है और इसके नाटकीय परिणाम भी सामने आ रहे हैं।

आगामी दशकों में जनांकीय कारक, विकास और सुधार के प्रभावकारी ताकत होंगे। विकास के प्रतिमान और भौगोलिक विस्तार में भिन्नता होगी। मूलभूत दबाव बना रहेगा। वर्ष 2008 में आर्थिक सहयोग और विकास संगठन ने वर्ष 2030 के लिए अनेक

उच्च शिक्षा सकल नामांकन अनुपात : भौगोलिक क्षेत्रानुसार (प्रतिशत 2000-2007)

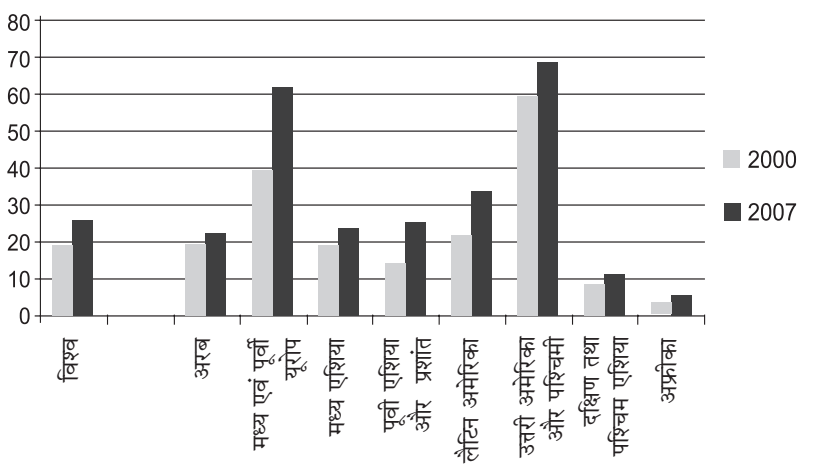

स्रोत: यूनेस्को इंस्टीट्यूट आफ स्टैटिक्स-2009

मुख्य जनांकीय रूझानों की पहचान की थी :

- उच्च शिक्षा प्रणालियों के साथ-साथ विद्यार्थी भागीदारी में सतत् विस्तार होगा। मात्र थोड़े से देशों में विद्यार्थियों की संख्या में कमी होगी।
- अधिकांश विकसित देशों में महिला विद्यार्थियों की संख्या अधिक होगी जबकि हर जगह उनकी भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि होगी।
- विद्यार्थी आबादी के संघटन में विविधता होगी– अधिक अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी, अधिक आयु के विद्यार्थी, अंशकालिक विद्यार्थी और अन्य दूसरे तरह के विद्यार्थी।
- उच्च शिक्षा में सामाजिक गतिशीलता का विस्तार जारी रहेगा– इसके साथ-साथ सामाजिक समूहों के बीच शैक्षिक अवसरों की असमानता पर इसके प्रभाव की अनिश्चितता बनी रहेगी।
- वंचित समूहों की पहुंच के प्रति मनोवृत्ति और नीतियों के साथ-साथ उनके बीच जागरूकता में परिवर्तन होगा और यह राष्ट्रीय परिचर्चा का अधिकार केंद्रीय विषय बनेगा।
- शैक्षणिक व्यवसाय और अधिक अंतरराष्ट्रीय अभिमुख और गतिशील बनेगा परंतु यह राष्ट्रीय परिस्थितियों के ढांचे के अनुकूल बना रहेगा।
- शैक्षणिक व्यवसाय की भूमिकाएं और गतिविधियों और अधिक विविधतापूर्ण तथा विशेषज्ञतापूर्ण एवं विविध रोजगार करार के अनुरूप होंगे।
- अनेक विकासशील देशों में विश्वविद्यालय की बढ़ती संख्या के मद्देनज़र योग्य अध्यापकों की मांग बनी रहेगी, मौजूदा स्थिति में अपेक्षाकृत कम योग्यता की स्थिति में सुधार नहीं होगा। अनेक देशों में मौजूदा अंशकालिक स्टाफ पर निर्भरता जारी रहेगी। (ओईपीडी 2008)

वैश्वीकरण और अंतरराष्ट्रीयकरण

21वीं सदी की मूलभूत वास्तविकता वैश्वीकरण है जिसने उच्च शिक्षा को पहले ही बहुत प्रभावित किया है। इस रिपोर्ट में हमने यह जाहिर करने की कोशिश की है कि यह विश्वविद्यालयों को कैसे प्रभावित करता है। हम वैश्वीकरण को एक ऐसी वास्तविकता/यथार्थ के रूप में परिभाषित करते हैं जो बढ़ती हुई समेकित अर्थव्यवस्था, नई सूचना और सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी, अंतरराष्ट्रीय ज्ञान के एक नेटवर्क का उदय, अंग्रेजी भाषा की भूमिका और शैक्षणिक संस्थानों के नियंत्रण से बाहर के अन्य बलों से निर्धारित

होता है। अंतरराष्ट्रीयकरण वह प्रक्रिया है जिसमें विविध नीतियों तथा कार्यक्रमों को विश्वविद्यालय और सरकारें वैश्वीकरण के प्रत्युत्तर में कार्यान्वित करते हैं। इनमें शामिल हैं– विद्यार्थियों को अध्ययन के लिए विदेशों में भेजना, विदेशों में विश्वविद्यालय परिसर खोलना, पाठ्यचर्या का अंतरराष्ट्रीयकरण करना या अंतरराष्ट्रीय साझेदारी में प्रतिभागिता।

विश्वविद्यालय हमेशा से अंतरराष्ट्रीय रुझानों से प्रभावित होते रहे हैं और कुछ हद तक शैक्षणिक संस्थानों, विद्वानों तथा शोध के व्यापक अंतरराष्ट्रीय समुदाय के अंतर्गत कार्य करते रहे हैं। मध्यकालीन यूरोप के शैक्षणिक जगत में लातिनी भाषा के प्रभुत्व के बाद वैज्ञानिक सम्प्रेषण की प्रभावी भाषा के रूप में अंग्रेजी का उदय अभूतपूर्व रूप से हुआ है। सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी ने त्वरित एवं अविलंब संपर्क का माध्यम निर्मित किया है और वैज्ञानिक संम्प्रेषण को सहज एवं सरल बना दिया है। इसी के साथ-साथ इन परिवर्तनों से मजबूत और साधन सम्पन्न विश्वविद्यालयों तथा कुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियां जो अधिकांशत: विकसित देशों की हैं, को ज्ञानजनक संसाधनों पर मालिकाना हक हासिल करने में मदद मिली है।

वैश्वीकरण के दौर में विकसित देश उन्नतशील उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अध्ययन और शोध के अवसर प्रदान करते हैं। अब उच्च शिक्षा रास्ट्रीय सीमाओं से बंधी हुई नहीं है। अनेक विकासशील देशों में यह प्रवृत्ति राष्ट्रीय संस्कृति और अस्मिता पर एक हमला के रूप में देखी जा रही है। इसमें कोई शंका नहीं है, दोनों स्थितियां मौजूद हैं। कमोवेश 2.5 मिलियन विद्यार्थियों, अनगिनत विद्वानों, डिग्री पाठ्यक्रमों और यहाँ तक कि अनेक विश्वविद्यालय वैश्विक धारा में बह रहे हैं। यह एक सच्चाई है। अंतरराष्ट्रीय सहयोग और समझौतों की दबावपूर्ण आवश्यकता है। परंतु विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू टी ओ) के गेट्स और समान स्तर के गुणवत्ता आश्वासन के कार्यान्वयन के मामले में ऐसे समझौतों से भारी असमानताओं का बीज़ बोया जा सकता है क्योंकि यूरोप और उत्तरी अमरीका की सुस्थापित शैक्षणिक शक्तियाँ परिसंवाद और नीति को प्रभावित करती नज़र आ रही हैं।

उच्च शिक्षा के वैश्वीकरण के मौजूदा दौर में अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी गतिशीलता एक प्रमुख मुद्दा है। कुछ आकलनों के अनुसार वर्ष 2020 तक 7 मिलियन से अधिक विद्यार्थियों का अंतरराष्ट्रीय गतिशीलता/विस्थापन बढ़ेगा। अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थियों का तीव्र प्रवाह राष्ट्रीय तथा सांस्थानिक रणनीतियों का प्रभाव रहा है परंतु यह परिघटना मुख्यत: दुनियाभर में विद्यार्थियों के अपने व्यक्तिगत निर्णय हैं। भारी संख्या में विद्यार्थियों का प्रवाह विकासशील देशों से उत्तरी अमरीका, पश्चिमी यूरोप, आस्ट्रेलिया और विशेषकर अंग्रेजी भाषी देशों की ओर है। यद्यपि यूरोपीय संघ के देशों तथा एशियाई देशों

के अंदर भी विद्यार्थी प्रवाह बढ़ रहा है। वैश्विक रूप से अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी प्रवाह अधिकांशत: दक्षिण-उत्तर परिघटना को प्रतिबिंबित करता है।

अंतरराष्ट्रीयकरण मुख्यत: क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर हो रहा है। यूरोप में बोलोग्ना प्रक्रिया और लिस्बन रणनीति इस सतर पर अंतरराष्ट्रीय संलग्नता के स्पष्ट उदाहरण हैं। यूरोपीय उच्च शिक्षा क्षेत्र के निर्माण में 40 से अधिक देशों की पहल दुनियाभर के ऐसे प्रयासों का एक मिशाल बन गई है। (ईएनएलएसीईएस) – लातिनी अमरीका, अफ्रीकी संघ में समरसतापूर्ण विकास की रणनीति और अन्य दूसरे प्रयास)

पिछले दशक में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संचालित अनेक संस्थानों और कार्यक्रमों में भारी बढ़ोतरी देखी गई है। कतर, सिंगापुर और संयुक्त अरब अमीरात ऐसे देश हैं जहाँ नीतिगत पहल के अंतर्गत अंतरराष्ट्रीयकरण का खुलकर बढ़ावा दिया गया है। उन्होंने विदेशी विश्वविद्यालयों को अपने देश में परिसर खोलने के लिए आमंत्रित किया है ताकि स्थानीय विद्यार्थियों को इसका लाभ मिल सके और क्षेत्र में उच्च शिक्षा का यहाँ केंद्र स्थापित हो सके। परंतु ऐसी स्थिति में दुनिया के साधनहीन और वंचित संस्थानों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भागीदारी के अवसर सीमित और दुर्लभ हैं।

विगत कई दशकों में देश के अंदर भी उच्च शिक्षा प्रणालियों में असमानताएं बहुत बढ़ी हैं। शैक्षणिक जगत में दो ही तयशुदा स्थान होते हैं– केंद्र और हाशिए। संसाधनों से सम्पन्न विश्वविद्यालय अपने शोध और गुणवत्ता की प्रतिष्ठा के कारण केंद्र में रहते हैं। मिशाल के लिए अफ्रीकी विश्वविद्यालय अपने आप को इस चुनौतियों से जूझते नज़र आते हैं और वैश्विक उच्च शिक्षा की रैंकिंग में अपने को नीचे पाकर कुंठाग्रस्त रहते हैं। वे विश्व के संस्थानों की रैंकिंग और लीग टेबल में शायद ही कभी दर्ज होते हैं और विश्व शोध में उनकी हिस्सेदारी भी बहुत कम होती है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में केंद्र - हाशिए की गतिशीलता के इर्द-गिर्द तनाव बढ़ रहा है। विकासशील देश अपने प्रमुख पारंपरिक विश्वविद्यालयों को विश्वस्तरीय विश्वविद्यालय के रूप में देखने के लिए लालायित रहते हैं। मौजूदा दौर में शैक्षणिक संस्थानों की रैंकिंग और डिग्री कार्यक्रम की चाह का मंत्र तनाव पैदा करते हैं।

सांस्थानिक रैंकिंग विश्वविद्यालयों के लिए बहुत मददगार हैं और उन्हें माध्यम के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग, शोध, विविध प्रकार के विषय और पाठ्यक्रम तथा शोध हेतु सरकारी तथा अन्य स्रोतों से भारी अनुदान प्राप्त करने में सहायक हैं। इन रैंकिंग प्रक्रिया में मूलभूत गड़बड़ियां हैं परन्तु ये धड़ल्ले से इस्तेमाल की जा रही हैं और बहुत प्रभावकारी हैं। इनके खत्म होने की संभावना भी नजर नहीं आ रही हैं।

राष्ट्रों तथा विश्वविद्यालयों की समृद्धि किसी भी विश्वविद्यालय या शैक्षणिक जगत की प्रतिष्ठा और गुणवत्ता तय करती है। विकासशील देशों का यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है जो बढ़ते नामांकन और उच्च गुणवत्तापूर्ण शोध विश्वविद्यालय की जरूरतों के बीच का अंतराल भारी दुविधा का कारण है।

उच्च शिक्षा में असमानताएं

हाल के वर्षों में अनेक नीतिगत प्रयासों के बावजूद समाज के सभी वर्गों को व्यापक रूप से उच्च शिक्षा का अवसर समान रूप से सुलभ नहीं हो पा रहा है। हाल में 15 देशों के एक तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि सभी देशों में भारी समेकित नीतियों और समावेशीकरण के बावजूद सुविधा संपन्न वर्ग अपेक्षाकृत अपना दबदबा बनाए हुए हैं।

देश के सभी वर्गों को उच्च शिक्षा प्रदान करने में गहरे रूप से पैठ बनाई हुई सामाजिक असमानताओं की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ये असमानताएं ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आर्थिक ढांचे में अंतर्निहित होती हैं जो किसी व्यक्ति की स्पर्धात्मक क्षमता को प्रभावित करती है। भौगोलिक परिस्थितियां, संपदा और संसाधनों का असमान वितरण समाज के कुछ वर्गों को अपवंचित करने में सहायक होते हैं। दूरवर्ती और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली आबादी तथा जनजातीय समूहों की उच्च शिक्षा में भागीदारी राष्ट्रीय औसत भागीदारी से भी नीचे है।

अनेक सरकारें उच्च शिक्षा की पहुंच बढ़ाने के लिए कई कदम उठाए हैं: मैक्सिको का शिक्षा मंत्रालय ने अपवंचित क्षेत्रों में अतिरिक्त शिक्षा सेवाओं के विस्तार के लिए निवेश किया है जिसके कुछ बेहतर परिणाम सामने आए हैं: उच्च शिक्षा में नामांकित 90 प्रतिशत बच्चे अपने परिवार की पहली पीढ़ी के हैं जो इसके दायरे में आए हैं और इनमें से 40 प्रतिशत बच्चे आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्र में रहते हैं। घाना, केन्या और तंजानिया ने महिला नामांकन को बढ़ावा देने के लिए प्रवेश हेतु न्यूनतम अंक में कमी किया है। भारत सरकार ने अपवंचित जातियों, जनजातियों तथा अन्य दूसरे समूहों के लिए विश्वविद्यालयों में सीटें आरक्षित किए हुए है। इसमें मामूली सुधार हुआ है। परंतु उच्च शिक्षा में निम्न जातियों, ग्रामीण आबादी और मुस्लिमों की भागीदारी सामान्य आबादी से पीछे है। ब्राजील ने अशक्त और अफ्रो-ब्राजीलियाई बच्चों के लिए विश्वविद्यालयों में सीट आरक्षण अनिवार्य किया है।

जिन देशों में उच्च नामांकन है, वहाँ भी असमानएं मौजूद हैं: अमरीका में अल्पसंख्यक विद्यार्थियों की भागीदारी दरें सतत पीछे हैं। कम्युनिटी कालेजों ने उच्च

शिक्षा को बहुत सुलभ किया है परंतु शोध अध्ययनों से पता चलता है कि कम्यूनिटी कालेज के विद्यार्थी 4 वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम में कब तक टिकेंगे यह सब उनके पारिवारिक सामाजिक, अर्थिक स्थितियों पर निर्भर करेगा न कि उनकी जाति या नस्ल पर। इंगलैंड भी उच्च शिक्षा की पहुँच विशेषकर अपने चोटी के विश्वविद्यालयों की पहुंच का विस्तार करने पर खास जोर दे रहा है।

उच्च शिक्षा की पहुंच के रास्ते में लागत एक बड़ा रोड़ा बनी हुई है। जहाँ शिक्षण शुल्क माफ है, वहां भी विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष लागत जैसे– रहन-सहन का खर्च उठाना पड़ता है और साथ ही रोजगार की स्थिति में होने वाली आय से वंचित होना पड़ता है। छात्रवृत्तियां, अनुदान और ऋण कार्यक्रम कुछ हद तक सफल तो हैं परंतु वे भी आर्थिक अड़चनों को दूर नहीं कर सकते। गरीब परिवारों के बच्चों के लिए ऋण का भय एक बड़ी बाधा है। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और दक्षिण अफ्रीका में आय - कांटिजेंट योजना (जहां ऋण भुगतान की योजनाएं परास्नातक आय से संबद्ध हैं) लोकप्रिय हुई हैं परंतु वह भी मध्यम और निम्न मध्यम वर्ग के विद्यार्थियों को ही आकर्षित करती है। मैक्सिको ने ऋण योजना को लागू किया जिसके कारण निजी क्षेत्र के शिक्षा संस्थानों में अधिकांश परिवारों की पहुंच बढ़ी है। चिली ने भी नया ऋण कार्यक्रम लागू किया है जो निम्न आय वर्ग के परिवारों के विद्यार्थियों के लिए लक्षित हैं।

शिक्षण अधिगम और पाठ्यचर्या

पहुंच का अभिप्राय मात्र दरवाजे से गुजरनेभर से अधिक है। समाज के सभी वर्गों के लिए वास्तविक प्रगति पूर्णता के स्तरों पर निर्भर करती है। इस संबंध में अपेक्षित आंकड़ों का अभाव है। परंतु यह स्पष्ट है कि विविध वर्ग के विद्यार्थी भी गुणवत्तापूर्ण नवाचारी पठन-पाठन हेतु शैक्षणिक व्यवस्था पर दबाव बनाए हुए हैं। शोधों से पता चलता है कि विश्वविद्यालयों में पठन-पाठन का विद्यार्थी को कक्षा में टिकाए रखने पर भारी प्रभाव पड़ता है। मिशाल के तौर पर मैक्सिको ने अंतरसास्कृतिक विश्वविद्यालयों का विकास किया जो राष्ट्रीय दर्शनों, संस्कृतियों, भाषाओं और इतिहासों से परिपूर्ण हैं। विद्यार्थी विविधता से भी रोजगारोन्मुख पाठ्यक्रमों और संस्थानों विशेषकर व्यापार, सूचना और संप्रेषण प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में लोकप्रियता बढ़ी है। मौजूदा दौर में दुनिया के सामने यह चुनौती है कि विविधताओं से युक्त विद्यार्थी समुदाय द्वारा शैक्षणिक कार्यक्रम पूरा करने और उस बदलती अर्थव्यवस्था और श्रम बल के अनुरूप कौशलों से लैस जनशक्ति के रूप में तैयार करने की चुनौती है। इसे पूर्णतः पूरा नहीं किया जा रहा है।

गुणवत्ता आश्वासन, जवाबदेही और योग्याता ढांचा

अनेक देशों में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता आश्वासन नीतिगत कार्य सूची में सबसे ऊपर आ गया है और एक अंतरराष्ट्रीय मुद्दा बन गया है। उच्च शिक्षा को नए कौशलों, व्यापक ज्ञान-आधार और बढ़ती जटिलताओं तथा अंतरनिर्भरताओं से भरी दुनिया में प्रवेश के लिए अपेक्षित क्षमताओं के विविध स्तरों से लैस स्नातक तैयार करने हैं। दुनियाभर की एजेंसियां इन लक्ष्यों को पूर्णत: स्पष्टता, माप, सर्वत्र स्वीकार्यता और सांस्कृतिक मूल्यों के संपूर्ण संदर्भों में परिभाषित करने के लिए जूझ रही है। वैश्वीकरण, क्षेत्रीय एकीकरण तथा छात्रों और विद्वानों का बढ़ता हुआ विस्थापन पारदर्शी गुणवत्तायुक्त आश्वासन व्यवस्था की जरूरत पर बल देती है जिसे सभी देशों में समझा जाये। परंपरागत संस्थानों तथा नये प्रदाताओं- जैसे कि दूरवर्ती शिक्षा कार्यक्रम तथा निजी (लाभ प्राप्त करने वाले) महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय गुणवत्ता के संबंध में नये प्रश्नों को जन्म दे रहे हैं। स्वाभाविक है। ''उच्च शिक्षा के उपभोक्ता'' (छात्र, अभिभावक तथा नियोक्ता) संस्थानों तथा योग्यता की प्रमाणिकता की मांग कर रहे हैं।

हालांकि गुणवत्ता एक बहुआयामी संकल्पना है, फिर भी विश्व उच्च शिक्षा के मूल्यांकन हेतु विश्व में एक पद्धति स्थापित हो चुकी है। पिछले वर्षों में स्थापित परंपरा के विपरीत यह पद्धति सरकारी प्राधिकरणों के विपरीत शिष्टजनों पर अधिक निर्भर रहता है। संस्थान अपने द्वारा ही तय किये गये उद्देश्यों के अनुसार अपना मूल्यांकन स्वयं करते हैं न कि किसी नियंत्रक प्राधिकार के अंतर्गत। कई मामलों में, कई सरकारों के नियंत्रक कार्य केवल मान्यता के लिये ही रह गये हैं। उच्च शिक्षा के परिणाम पर भी बल दिया जा रहा है। यह नये प्रयास, जो कि अभी अपनी प्रारंभिक चरण में है, जवाबदेही पर बल डालते हैं। इनके लिये अभी बहुत विकास की आवश्यकता है क्योंकि शैक्षिक परिणामों की सटीक् परिभाषा और मापन कठिन है, और इसके लिये न तो अभी कोई विधि अथवा पद्धति की संकल्पना तैयार की गई है।

उच्च शिक्षा का वित्तपोषण और पब्लिक गुड/प्राईवेट गुड की बहस

उच्च शिक्षा को आजकल विकास का इंजन माना जाता है। सरकारी राजस्व कर और उच्च शिक्षा की बढ़ती हुई लागत के बीच सामंजस्य नहीं बन पा रहा है। जहां पर उच्च शिक्षा मुफ्त या फिर सरकार द्वारा सहायता प्राप्त (सब्सीडाइज्ड) हों वहां छात्रों का अधिक संख्या में नामांकन चिंता का विषय है। वित्तीय संदर्भ में यह एक अस्थायी मॉडल है, जो कि व्यवस्था पर बल डाल रहा है कि समुदाय और उच्च शिक्षा के बीच के 'सामाजिक करार' को मूलभूत रूप से पुर्नगठित किया जा सके। अभिभावक तथा

छात्र ट्यूशन और अन्य शुल्क के लिये संयुक्त रूप से जिम्मेदार हैं। यहां तक कि पश्चिमी यूरोप में भी, जो कि लंबे समय से मुफ्त निजी उच्च शिक्षा का गढ़ रहा है, वहां भी केवल उत्तरी यूरोप के कुछ देशों को छोड़कर ट्यूशन फीस माध्यमिक शिक्षा के वित्त पोषण का भाग है।

परंपरागत रूप से माध्यमिक शिक्षा को एक सार्वजनिक वस्तु के रूप में देखा जाता है, जो कि नागरिकों को शिक्षा के माध्यम से समुदाय के योगदान, मानव पूंजी में सुधार, सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा तथा आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में सहायक है। पिछले कई दशकों में उच्च शिक्षा को एक निजी वस्तु के रूप में देखा गया है जो कि ज्यादातर व्यक्तिगत रूप से लाभ पहुंचाता है, और निहितार्थ यह होता है कि अकादमिक संस्थान, उनके छात्र, पूर्वोत्तर माध्यमिक शिक्षा की लागत के लिये एक महत्वपूर्ण भाग देंगे। बड़ी संख्या में नामांकन के कारण उच्च शिक्षा व्यवस्था तथा संस्थान अपने राजस्व का निर्माण स्वयं कर रहे हैं। यह चर्चा इसलिये गहन हुई क्योंकि न केवल बड़ी संख्या में नामांकन द्वारा उत्पन्न वित्तीय चुनौतियों के कारण बल्कि इस बात को लेकर कि अब सेवाओं के लिये राजनैतिक रूप से निजीकरण पर अधिक जोर दिया जा रहा है, जिसे पहले राज्य द्वारा प्रदान किया जाता रहा है। लागत प्रतिपूर्ति, उच्च लागत वाली ट्यूशन तथा विश्वविद्यालय उद्योग संबंध उच्च शिक्षा प्राय: परंपरागत सामाजिक भूमिका तथा सेवा प्रकार्यों की भूमिका से संघर्ष करते हुये नज़र आते हैं। कई विश्वविद्यालय प्रकाशन गृह, जर्नल, थियेटर ग्रुप, गैर-व्यावसायिक रेडियो तथा टेलीविज़न को प्रायोजित करते हैं और कई अन्य तरीकों से मुख्य बुद्धिजीवी केंद्र के रूप में कार्य करते हैं। ये भूमिकाएं कमजोर सामाजिक, सांस्कृतिक वाले देशों में तथा खुल कर चर्चा न करने वाले संस्थानों में महत्वपूर्ण हैं।

आर्थिक संकट, अधिक संख्या में नामांकन और प्राइवेट गुड के पक्ष में व्यापक स्वीकृति ने विश्वभर में उच्च शिक्षा के निजीकरण, अध्ययन परिवेश में गिरावट, अकादमिक व्यवसाय के लिये समस्याएं और अकादमिक जगत की सामान्य बदहाली को बढ़ाने में सहायक है। संसाधन कटौती का सबसे बुरा असर उप-सहारा अफ्रीका में पड़ा है। विकासशील देशों में यह बहुत गंभीर है और संक्रमण के दौर से गुजर रहे देशों में भी तथा धनाढ्य देशों में भी इसका विपरीत प्रभाव पड़ा है। इन वित्तीय दबावों के बावजूद, विश्वविद्यालय तथा राष्ट्रीय व्यवस्थाओं ने लागत तथा मांग का निवारण किया है।

पहला- कक्षाओं में संख्या बढ़ाकर और अध्यापकों का कार्य बढ़ाकर, कम लागत वाले अंशकालिक संकाय को पूर्ण-कालिक स्टाफ की जगह नियुक्ति, अकादमिक

समस्या तथा कड़ी प्रतियोगिता के रूप में सामने आई हैं।

राजस्व के स्तर पर समस्या के निवारण में शामिल हैं– लागत में साझेदारी - जिसमें 'ट्यूशन फीस' तथा अन्य 'उपभोग्ता प्रभार'। ट्यूशन फीस उन देशों में भी प्रारंभ हो गई है जहां पहले उच्च शिक्षा लगभग नि:शुल्क थी। (चीन 1997, यू.के. 1998, ऑस्ट्रिया 2001 तथा अन्य), कई देश खासकर सब-सहारा अफ्रीका में तथा केंद्रीय तथा पूर्वी यूरोप में छात्रों का दैनिक खर्च बहुत अधिक कर दिया गया है।

कुछ देश खासकर जापान, साउथ कोरिया, फिलीपाइन्स, इंडोनेशिया, ब्राजील तथा अन्य देशों में सार्वजनिक क्षेत्र को चुनिंदा और अभिजात्य के लिये रखा गया है, और बृहद नामांकन के भार को निजीकरण के लिये छोड़ दिया गया है।

निजीकरण की क्रांति

निजी शिक्षा में पूरे विश्व में बढ़ोत्तरी पिछले कुछ दशकों का बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है। आज लगभग विश्व की तीस प्रतिशत उच्च शिक्षा निजी क्षेत्र में है। निजी शिक्षा बहुत से देशों में शताब्दियों से प्रचलित थी और जापान, दक्षिण कोरिया तथा फिलीपाइन्स जैसे पूर्वी एशियाई देशों में परंपरागत रूप से प्रभावकारी थी। इसके अतिरिक्त अमरीकी उच्च शिक्षा का भी एक मुख्य भाग भी इससे प्रभावित था परन्तु विश्वव्यापी स्तर पर यह अधिक प्रचलित नहीं थी। आजकल निजी उच्च शिक्षा उनमें से अधिकतर लाभ या अर्द्ध-लाभ के लिये है, सबसे अधिक वृद्धि विश्वभर में इन्हीं की हो रही है। सत्तर प्रतिशत से अधिक निजी नामांकन वाले देशों में इंडोनेशिया, जापान, फिलीपाइन्स, साउथ कोरिया तथा ताईवान है। आज मेक्सिको, ब्राजील तथा चिली में आधे से अधिक छात्रों को शिक्षा निजी क्षेत्र में प्रदान हो रही है। निजी विश्वविद्यालय त्वरित गति से केंद्रीय तथा पूर्वी यूरोपीय एवं पूर्व सोवियत देशों, अफ्रीका, चिली तथा भारत में फैल रहे हैं। सामान्यत: निजी क्षेत्र ''मांग-पूरककर्त्ता'' है– जो कि उन छात्रों को प्रवेश देता है जो सार्वजनिक संस्थानों में प्रवेश नहीं पाते हैं या फिर दूसरे विश्वविद्यालयों में सीटें भर जाने के कारण नामांकित नहीं हो सकते। हालांकि, कुछ चुनिंदा निजी विश्वविद्यालय भी हैं, परन्तु निजी विश्वविद्यालय अधिक जनसंख्या की मांग पूर्ण करते हैं और इन्हें प्रतिष्ठित नहीं माना जाता। कानूनी रूप से लाभ के लिए संचालित संस्थान उच्च शिक्षा उप-क्षेत्र का एक मामूली घटक है, परन्तु विकासशील देशों में इसमें वृद्धि उल्लेखनीय है। यह क्षेत्र मुख्यत: व्यापार मॉडल पर चलता है, जिसमें शक्ति तथा प्राधिकार बोर्ड तथा मुख्य अधिकारियों के पास होती है और संकाय के पास बहुत ही सीमित प्राधिकार या प्रभाव होता है। छात्रों को प्राय: उपभोक्ता के रूप में देखा जाता है।

यही प्रवृत्ति सरकारी विश्वविद्यालयों के निजीकरण की प्रक्रिया है। संयुक्त राज्य अमेरीका में, अधिकांश जन अनुसंधान विश्वविद्यालय अपना एक चौथाई से भी कम बजट राज्य से प्राप्त करता है। वह शेष बजट छात्र शुल्क, अनुसंधान, विश्वविद्यालय उद्योग संबंध, विश्वविद्यालय के उत्पादों की बिक्री के माध्यम से तथा अन्य उपक्रमीय गतिविधियों द्वारा उत्पन्न करते हैं। राज्य विश्वविद्यालय का निजीकरण शेष विश्व की एक नई प्रगति है। आस्ट्रेलिया, चीन जैसे देशों में विश्वविद्यालयों से अपना राजस्व स्वयं एकत्र करने को अधिक कहा जाता है। कुछ मामलों में यह वित्तीय स्रोत संस्थानों के व्यावसायीकरण में योगदान देते हैं जो कि विश्वविद्यालय की परंपरागत भूमिका से विपरीत है।

सूचना तथा संप्रेषण तकनीक

यह जाहिर है कि अकादमिक जगत प्रौद्योगिकी से प्रभावित होता है, या फिर कुछ लोग तर्क देंगे कि यह सूचना तथा संप्रेषण तकनीक द्वारा रूपांतरित हो चुकी है। यह कहा जाता है कि सूचना तकनीक, दूरवर्ती शिक्षा, तथा अन्य तकनीकी नवाचारों के द्वारा परंपरागत शिक्षा लगभग बेकार हो जायेगी हालांकि, हमारे विचार में, परंपरागत विश्वविद्यालय का अंत नहीं होगा। परंतु एक व्यापक परिवर्तन होता जा रहा है और यह 21वीं शताब्दी के अकादमिक रूपातंरण का मुख्य भाग है।

इंटरनेट ने ज्ञान के संप्रेषण में क्रांति ला दी है। सभी प्रकार के अकादमिक संपर्क के लिए ई-मेल एक महत्वपूर्ण साधन बन चुका है। इलैक्ट्रानिक जर्नल आम बात है और कुछ क्षेत्रों में तो इनका फैलाव बहुत ज़्यादा है। पुस्तकों और जर्नल के परंपरागत प्रकाशक अपने प्रकाशनों के वितरण हेतु इंटरनेट की ओर अग्रसर हैं। इस प्रवृत्ति के गहन निहितार्थ के परीक्षण करने पर पता चलता है कि इसने अमीरों तथा गरीबों के बीच की खाई को और अधिक बढ़ा दिया है। विश्व के कुछ भाग, विशेषत: अफ्रीका में अभी भी बहुत देश उच्च गति वाली इंटरनेट पहुंच से दूर हैं। दक्षिण कोरिया तथा सिंगापुर उच्च गति वाली इंटरनेट की सेवा में अग्रणी हैं।

अकादमिक व्यवसाय

अकादमिक व्यवसाय इस समय अत्याधिक दबाव में है। अत्याधिक नामांकन के मांग के प्रत्युत्तर में कई देशों में अकादमिकों की औसत योग्यता में कमी आई है। यह भी संभव है कि विश्व के आधे वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षकों के पास केवल स्नातक डिग्री की योग्यता हो। (चीन में अकादमिक व्यवसाय के केवल 9 प्रतिशत के पास डाक्टरेट डिग्री है, भारत में 35 प्रतिशत के पास) विशेषत: ऐसी स्थिति विकासशील देशों में है। लैटिन अमेरीका

में 80 प्रतिशत अकादमिक पार्ट-टाईम हैं, जिनके पास रोजगार की कोई सुरक्षा नहीं है। सभी जगह पार्ट-टाईम भागीदारी बढ़ती जा रही है। संयुक्त राज्य अमेरीका भी इससे अछूता नहीं है। कई देशों में विश्वविद्यालय अब ऐसे अध्यापकों की पार्ट-टाईम नियुक्ति करते हैं जिनके पास किसी अन्य संस्थान में फुल-टाईम नौकरी होती है। ऐसी स्थिति में अध्यापक किसी भी जगह अपनी प्रतिबद्धता नहीं दे पाते। (उदाहरण- चीन, वियतनाम, युगांडा)। विभिन्न देशों में अकादमिक वेतन में भी बहुत भिन्नता है जिसके परिणामस्वरूप उनका विस्थापन अधिक वेतन दिये जाने वाले देशों में हो रहा है। कई देशों में अकादमिक वेतन बहुत ही कम है और उन्हें आजीविका के लिए दूसरे देशों में प्रवास करना ही होगा। हाल ही में पंद्रह देशों में अकादमिक वेतन के अध्ययन से पता चलता है कि पूर्ण-कालिक स्टाफ अपने वेतन के आधार पर आजीविका चला सकता है, परन्तु वह अपने देश में औसत वेतन ही ग्रहण कर पाते हैं। (रुम्बले, पैचिको तथा आल्टबाख 2005)।

जवाबदेही तथा मूल्यांकन के संदर्भ में, प्रोफेसरों की स्वायत्तता लगभग समाप्त हो चुकी है। उच्च शिक्षा में प्राधिकार की सुई अकादमिक समुदाय से हटकर प्रबंधकों और नौकरशाहों की तरफ झुक गई है जिनका विश्वविद्यालय पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ रहा है।

अनुसंधान परिवेश

आधुनिक विश्वविद्यालय के तीन मिशन- अध्यापन, अनुसंधान तथा सार्वजनिक सेवाएं - एक दूसरे से संघर्ष करते हुए नज़र आते हैं। यह इस हद तक है कि वह अपने कार्यक्रम और योजना को विकसित करने हेतु स्वायत्त हैं। विश्वविद्यालय प्राथमिकताओं और संसाधनों में आवंटन हेतु कठोर निर्णय लेने होंगे। जैसे सरकार तथा अन्य एजेंसियाँ जो उच्च शिक्षा की योजना व्यवस्था करती रही हैं।

अनुसंधान विश्वविद्यालय अकादमिक व्यवस्था के शिखर पर हैं और वैश्वीकरण ज्ञान नेटवर्क में प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए हैं। इसके लिये उन्हें वृहद व्यय की आवश्यकता है और इनके रख-रखाव बहुत खर्चीला है। उनकी सुविधाएं, जैसे– प्रयोगशाला, पुस्तकालय तथा सूचना एवं तकनीकी आधार संरचना का उच्चतम अंतरराष्ट्रीय मानदंडों के अनुसार पूर्ण करना चाहिये। राष्ट्रीय विकास एजेंसियों के लिये मुख्य क्षेत्रों में अनुसंधान उत्पादन जैसे कि सूचना तकनीक तथा जीव-विज्ञान में अनुसंधान, बहुत ही महत्वपूर्ण हो चुका है और निजी संस्थानों के लिए भी यह प्रतिष्ठा की बात है। बायो-टैक्नोलॉजी तथा इनफॉरमेटिक्स जैसे विषयों को बढ़ावा देने हेतु हाल के वर्षों में विश्वविद्यालय आध ाारित अनुसंधान हेतु सरकारी समर्थन बढ़ा है। यूरोपीय संघ में, पिछले कुछ वर्षों में

अनुसंधान तथा विकास पर उच्च शिक्षा व्यय में काफी वृद्धि हुई है। सरकारी क्षेत्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक सहयोग संगठन तथा विकासशील देशों में अकादमिक अनुसंधान का 72% वित्त पोषण करती है। विश्वविद्यालय के भीतर विश्वविद्यालय-सरकार-उद्योग के त्रिकोणीय संबंध ने महत्वपूर्ण संगठनात्मक परिवर्तनों को उत्पन्न किया है। नये कार्यालय अस्तित्व में आये हैं और फल फूल रहे हैं तथा विश्वविद्यालय के लिये आय के नये स्रोतों को जन्म दे रहे हैं।

उच्च शिक्षा में विशेषत: अनुसंधान विश्वविद्यालय में बौद्धिक संपदा एक चुनौती बन रहा है ज्ञान किसका है? अनुसंधान से किसे लाभ प्राप्त होता है? राजस्व की अधिकतम उगाही करने हेतु विश्वविद्यालय बौद्धिक संपदा - पेटन्ट, लाइसेन्स तथा आय वाले अनुसंधानों का अधिकार अपने पास रखना चाहते हैं। यह विषय ज्ञान तथा अनुसंधान का सृजन करने वालों तथा ज्ञान का नियंत्रण और इससे लाभ प्राप्त करने वाले प्रायोजकों के बीच संघर्ष की स्थिति पैदा करता है।

विकासशील देशों में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुसंधान सरकारी अनुसंधान संस्थानों में केंद्रित राज्य प्रायोजित उपक्रम था। 1990 में सोवियत रूस के पतन के बाद इसमें व्यापक परिवर्तन हुआ। इसमें सबसे उल्लेखनीय परिवर्तन चीन में हुआ जहां विश्वविद्यालय का वित्त पोषण पश्चिमी देशों की तर्ज पर आधारित है। कई अन्य मध्यम आय वर्ग वाले तथा विकासशील देश अपनी अनुसंधान गतिविधियों की गुणवत्ता और राशि को बढ़ाने के लिये उत्साहपूर्वक अपने एजेंडा पर काम कर रहे हैं। दक्षिण कोरिया में, 1998 के 'ब्रेन कोरिया' योजना के अंदर परंपरागत रूप से शीर्ष विश्वविद्यालयों में अनुसंधान प्रयासों के चयन और सकेंद्रण को प्रोत्साहित किया है। लैटिन अमेरीका में, चुनिंदा बड़े स्तर के विश्वविद्यालयों में ही विश्वविद्यालय आधारित अनुसंधान का सकेंद्रण रहा। ब्राजील में प्रत्येक वर्ष 10,000 पी.एच-डी तथा 3,000 मास्टर डिग्री प्रदान की जाती है, जो कि पिछले दस वर्षों में 300% की बढ़ोतरी है। स्नातक कार्यक्रम का क्रम उनके अनुसंधान उत्पादकता तथा वित्त के अनुसार किया जाता है।

भारत के लिये निहितार्थ

भारत ऐसे राष्ट्रों में सम्मिलित है जो उन प्रवृतियों से सबसे ज्यादा प्रभावित है जिनकी यहां चर्चा की गई है क्योंकि यहाँ उच्च शिक्षा भारी नामांकन चरण के दौर से गुजर रही है। इसी दौरान यहां की अर्थव्यवस्था सबसे तीव्र गति से बढ़ रही है। भारतीय उच्च शिक्षा व्यवस्था की चुनौतियां सर्वव्याप्त हैं। वैश्विक उच्च शिक्षा के क्रम में भारत का नंबर शायद ही कहीं आता हो। इसके साथ-साथ यहां पर नामांकन दर चीन तथा अन्य

मध्यम आय वाले देशों से बहुत कम है। भारत अपने युवाओं के मात्र दस प्रतिशत को ही उच्च शिक्षा की पहुंच उपलब्ध करा पाता है जबकि चीन में यह इससे दोगुना है। सबसे अधिक औद्योगिक देशों में प्रासंगिक आयु समूह में 50% से अधिक को उच्च शिक्षा प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त भारत में उच्च शिक्षा में त्याग दर सबसे अधिक है। भारत में उच्च गुणवत्ता वाले चोटी के अनुसंधान विश्वविद्यालयों का अभाव है और भारत में तो अभी उन लोगों को इसके पहुंच के दायरे में लाना है जो शोध करना चाहते हैं। (2009 आल्टबाख, 2006 अल्टबाख)।

भारत की अर्थव्यवस्था जैसे-जैसे बढ़ती जा रही है उसके लिए उच्च कौशल स्तर की आवश्यकता है। इसके लिए भारत में पूर्वोत्तर माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर उच्च गुणवत्ता वाले संस्थानों का अभाव है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान और प्रबंधन संस्थान कुछ चुनिंदा विशिष्ट संस्थान हैं जो विश्व स्तरीय शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, परंतु ये अनुसंधान संस्थान नहीं हैं और यहाँ बहुत ही कम छात्रों का नामांकन होता है। वास्तव में कोई भी भारतीय विश्वविद्यालय विश्व स्तरीय गुणवत्ता युक्त नहीं है और न ही किसी के पास अंतरराष्ट्रीय प्रयोगात्मक सुविधा उपलब्ध है। कुछ अकादमिक समूहों का ही सर्मपण है जिसके परिणामस्वरूप भारत में अनुसंधान आलेखों का खूब प्रकाशन हो रहा है। आधुनिक अर्थव्यवस्था के लिए 50 अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगात्मक अनुसंधान विश्वविद्यालयों की आवश्यकता है। भारत के अपने अभिजात्यवर्ग और आम जनता के लिये विभिन्न अकादमिक व्यवस्था का निर्माण करना होगा। इस समय कुछ लघु और विशिष्ट संस्थानों को छोड़कर अधिकांश महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का उद्देश्य स्पष्ट नहीं है। भारत के 25000 के स्नातक महाविद्यालयों में से केवल चुनिंदा महाविद्यालयों के लक्ष्य का उद्देश्य स्पष्ट है। भारत के 480 विश्वविद्यालयों के पास विशिष्ट और नवाचारी प्रोफाईल का निर्माण हेतु न तो कोई स्पष्ट दिशानिर्देश अथवा संसाधन उपलब्ध है। विविध उद्देश्यों में स्पष्टता तथा वित्त-पोषण की पद्धति में भी स्पष्टता, दूसरे देशों में सफल अकादमिक व्यवस्था का भाग है। भारत सामान्य रूप से शिक्षा पर और विशिष्ट रूप से उच्च शिक्षा पर अधिक व्यय नहीं करता है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद का केवल एक प्रतिशत ही शिक्षा पर व्यय किया जाता है जबकि विशेषज्ञों की राय में यह 5% होना चाहिए। विकसित देश आमतौर पर अपने सकल घरेलू उत्पाद का 5% शिक्षा पर व्यय करते हैं। अगर उच्च शिक्षा को शीर्ष स्तर पर उच्च गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रदान करती है और न्यूनतम स्तर पर आम जनता की मांग को पूरा करना है तो इसके लिए और अधिक व्यय की आवश्यकता है। जवाबदेही तथा गुणवत्ता की सुनिश्चितता किसी भी सफल जन उच्च शिक्षा व्यवस्था के लिये महत्वपूर्ण है। भारत

के प्रयास न तो प्रभावी हैं और न ही वह गुणवत्ता को प्रोत्साहित करते हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद से प्राप्त इस व्यवस्था में जवाबदेही और भारत के स्नातक महाविद्यालयों का नियंत्रण विश्वविद्यालय प्राधिकार के पास था और वह बुनियादी मानदंड तथा आम नीतियों के साथ। अधिकांश महाविद्यालयों को नौकरशाही तथा नियंत्रित परिवेश में ले जाने में सफल रहा, विश्वविद्यालयों के पास हालांकि कुछ औपचारिक स्वायत्तता होती है परंतु उनका वित्तपोषण और नियंत्रण राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है। कुछ मामलों में इनका राजनीतीकरण भी किया गया है। सरकारी नियंत्रण गुणवत्ता सुनिश्चित करने के बजाय नौकरशाही के नियमों को पूर्ण करने में अधिक चिंतित रहता है। उच्च शिक्षा का समर्थन करने वाली केंद्रीय सरकारी एजेंसियों जैसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद की अक्सर आलोचना इनके अप्रभावी होने के कारण की जाती है। गुणवत्ता का आश्वासन वृहद स्तर पर प्रभावी नहीं है। इन मुद्दों से जूझने के लिए भारत को एक प्रभावी तंत्र की स्थापना करनी होगी।

21वीं शताब्दी की उच्च शिक्षा का एक मुख्य घटक अंतरराष्ट्रीयकरण है। विश्व में सबसे अधिक छात्रों के निर्यातक के रूप में भारत अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महत्वपर्ण स्थान रखता है। हालांकि, भारत के इससे हानि हो रही है। भारत के महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय अपने आप को वर्तमान में अंतरराष्ट्रीयकरण की सोच से दूर रखा हुआ है। अधिकांश के विदेशों से सार्थक संबंध नहीं हैं। भारत अंतरराष्ट्रीय प्रवृत्तियों के हाशिए पर है। मगर, फिर भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। विदेशी विश्वविद्यालय भारत में भारतीय विश्वविद्यालयों के साथ यहाँ की आर्थिक वृद्धि और उच्च शिक्षा क्षमताओं को देखते हुए काम करने में अपनी दिलचस्पी दिखा रहे हैं। हाल ही में केन्द्रीय सरकार द्वारा विदेशी सहयोग और संस्थानों के लिये भारतीय उच्च शिक्षा के द्वार खोले जा रहे हैं।

अतंरराष्ट्रीय स्तर पर भारत के पास लाभ की स्थिति है। यहाँ पर अंग्रेजी भाषा का प्रयोग उच्च शिक्षा में इसे अंतरराष्ट्रीय जुड़ाव तथा कार्यक्रमों में भागीदारी के लिए लाभकारी होगा। कुछ भारतीय संस्थानों ने पहले ही विदेशों में शाखाएं और कार्यक्रम संचालित किए हुए हैं। विदेशों में अध्ययन को लेकर भारतीय छात्राओं की चाह को विश्व में महत्व दिया जाता है क्योंकि भारत छात्रों का सबसे बड़ा निर्यातक देश है।

भारत के पास एक बहुत बड़ा निजी शिक्षा क्षेत्र है जिससे परंपरागत रूप से राज्य द्वारा सब्सिडी प्रदान की जाती है और सार्वजनिक विश्वविद्यालयों का इन पर कड़ा नियंत्रण होता है। भारत के 25,000 कालेजों में अधिकांश प्राईवेट हैं। परंतु उनके संचालन का प्रत्येक आयाम विश्वविद्यालय नियामकों द्वारा नियंत्रित होता है और

परंपरागत रूप से अधिकांश सहायता प्राप्त होते हैं। स्थिति में परिवर्तन हो रहा है अब ऐसे कई निजी विश्वविद्यालय हैं जो सरकारी नियंत्रण से बाहर हैं और जिन्हें कोई सार्वजनिक वित्त पोषण नहीं मिलता है। अब ऐसे कालेजों की संख्या भी बढ़ती जा रही है, जिन्हें सार्वजनिक सहायता नहीं मिल रही है, जबकि वे सार्वजनिक विश्वविद्यालयों से संलग्न हैं और उनके नियंत्रण में भी हैं। गैर-सहायता प्राप्त निजी उच्च शिक्षा क्षेत्र त्वरित गति से आगे बढ़ रहा है- परन्तु यह तय करना है कि यह जनता के हितों को सुनिश्चित करेगा, एक चुनौतीपर्ण कार्य है।

यह स्पष्ट है कि भारत वैश्वीकरण की प्रवृत्तियों से प्रभावित है। अभी तक, इस बात का बहुत कम प्रमाण है कि देश वैश्विक अकादमिक परिवेश के पाठ को पढ़ रहा है या फिर व्यवस्थित रूप से अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगात्मक अकादमिक व्यवस्था का सृजन कर रहा है।

समापन

आजकल हम एक ऐसे गंभीर वैश्विक आर्थिक संकट के बीच रह रहे हैं जिसका समुदाय पर प्रभाव पड़ेगा और उच्च शिक्षा पर इसका प्रभाव क्या होगा, यह अभी स्पष्ट नहीं है। कई देशों तथा विश्वविद्यालयों में वित्तीय समस्याएं आऐंगी जो अल्प समय के लिये या फिर मध्यम काल के लिये बहुत गंभीर होंगी। हालांकि इसका प्रभाव विश्वव्यापी होगा और कुछ राज्यों को अन्य राष्ट्रों की तुलना में कम नुकसान होगा। आर्थिक परिवर्तन की गंभीरता एक वृहद कारक होगा, परन्तु विशिष्ट राष्ट्रीय तथा स्थानीय नीतियां महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगी। वर्तमान के आकलन संकेत देते हैं कि कम विकसित कुछ देशों पर प्रभाव चरणबद्ध रूप में होगा; क्योंकि यहां के विश्वविद्यालयों के पास कम आधार-संरचना या संसाधन हैं। आर्थिक संकट के निम्नांकित निहितार्थ होंगे :

- अनुसंधान विश्वविद्यालयों के बजट पर महत्वपूर्ण रूप से बाधा आएंगी क्योंकि उनके सतत् सुधार हेतु सरकार संसाधन उपलब्ध नहीं करा पाएंगी।
- कई मामलों में, उच्च शिक्षा की पहुंच में नाटकीय रूप से कटौती न हो, इसलिये यह सुनिश्चित करने के लिये प्राथमिकता निधि के आवंटन को लेकर होगी। जिन देशों में छात्र ऋण कार्यक्रम सुविधा उपलब्ध है, निजी या सार्वजनिक क्षेत्र में, वहां छात्रों की उपलब्धता को लेकर कठिन नियम बनाए जाएं।
- व्यवस्था पर छात्रों की ट्यूशन फीस बढ़ाने या इसे बढ़ाने के लिये दबाव डालपे की चुनौती होगी।
- विश्वविद्यालयों में लागत घटाने की रणनीति गुणवत्ता में गिरावट लायेगी – अधिक

पार्ट-टाईम शिक्षकों की नियुक्ति होगी, कक्षा में छात्रों की संख्या बढ़ेगी और अन्य बचत कार्यक्रम लागू किये जायेंगे।

- नियुक्ति, नई सुविधा का निर्माण, सूचना तकनीक में सुधार तथा पुस्तकों और जर्नल की खरीद पर संभावित ''प्रतिबंध'' होंगे।

हम उच्च शिक्षा के वैश्वीकरण की मूलभूत आवश्यकता को तथा पूरे विश्व भर में सभी समुदायों की सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता हेतु आवश्यक शिक्षा प्रदान करने के लिये और जन आधारित अर्थव्यवस्था का समर्थन हेतु उत्साह से भरे कालेजों की आवश्यकता को पूर्ण रूप से समझते हैं।

पब्लिक गुड के रूप में उच्च शिक्षा की भूमिका मूलभूत रूप से महत्वपूर्ण है और इसका समर्थन किया जाना चाहिए। हमें इस पर बल देना होगा क्योंकि उच्च शिक्षा का यह पक्ष आय और प्रतिष्ठा के बीच नज़रअंदाज होता जा रहा है।

उच्च शिक्षा की बहुआयामी तथा विविध उत्तरदायित्व आधुनिक समुदाय की अंतिम कुंजी है, परन्तु यह विस्तारित भूमिका काफी जटिलता और नयी चुनौतियों को भी जन्म दे रही है। वैश्वीकृत विश्व में उच्च शिक्षा की भूमिका को समझने का पहला उदेश्य क्षितिज पर मंडराती हुई चुनौतियों का सामना करना है। सबसे बड़ी चुनौती मानव पूंजी और निधि का असमान वितरण है जो कि कुछ देशों को नये विकल्पों अवसरों का पूर्ण लाभ उठाने को मौका देगा, जबकि अन्य देशों के लिए और अधिक पिछड़ने का ज़ोखिम होगा।

संदर्भ

अल्टबाख, फिलिप जी. (2006): टाईनी एट द टॉप, विल्सन क्वार्टरली (ऑटम) पृ. 49-51

अल्टबाख, फिलिप जी. (2009): द जीयंट अवेक : हॉयर एजुकेशन सिस्टम इन चाईना एंड इंडिया : इकानमिक एंड पालिटिकल वीकली : 44 (जून 6) पृ. 39-51

आर्गेनाईजेशन फार इकानमिक कोआपरेशन एंड डवलपमेंट (2008): हायर एजुकेशन टू 2030, जिल्द-I : डेमोग्राफी, सं. एस विन्सेंट-लान्करिन, पेरिस : ओ.ई.सी.डी.

रूम्बले, लॉरा ई, ईवान पैखिको, तथा फिलिप जी. अल्टबाख (2008) : इंटरनेशनल कपैरीज़न आफ अकादमिक सैलरीज : एन एक्सलोरेटरी स्टडीज़, चेस्टनट हिल, एम.ए. बोस्टन कालेज सेंटर फार इंटरनेशनल हायर एजुकेशन

(जेपा, वर्ष 25, अंक 4, अक्टूबर 2011 से साभार)

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 19, अंक 1, अप्रैल 2012

प्रभावी विद्यालय प्रबंधन हेतु प्रधानाचार्य में अपेक्षित कौशल

अमित कुमार* एवं **अर्चना अग्रवाल****

सुव्यवस्थित ज्ञान को वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप मानव हित में जन-जन तक पहुँचाने का व्यापक एवं सर्वमान्य माध्यम विद्यालयीय शिक्षा व्यवस्था है। विद्यालय शैक्षिक प्रक्रिया की एक आधारभूत संगठनात्मक इकाई है और प्रधानाचार्य उसका केन्द्र बिन्दु है। विद्यालयीय शिक्षा व्यवस्था में प्रधानाचार्य का प्रभावशाली व्यक्तित्व एक अच्छे प्रबन्धक के लिए उत्तरदायी होता है। प्रधानाचार्य के मार्गदर्शन में ही विद्यालय की समस्त शैक्षिक तथा प्रशासनिक प्रक्रिया सम्पन्न होती है। प्रधानाचार्य अपनी संतुलित एवं अनुभवी दृष्टि, व्यक्तित्व की विशिष्टता एवं अपनी योग्यता व कर्मठता से अपने विद्यालय के शिक्षकों का नेतृत्व कर विद्यालय को निर्धारित लक्ष्य तक पहुंचाने में सफल होता है।

यह व्यापक स्तर पर अनुभूत तथ्य है कि विद्यालयीय शिक्षा की गुणवत्ता के स्तरोन्नयन द्वारा देश, समाज तथा समग्र मानव जाति के लिए सुयोग्य, सच्चरित्र, निष्ठावान एवं उपयोगी विश्व-नागरिकों का निर्माण सुनिश्चित करने में प्रधानाचार्यों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। ग्रामीण तथा नगर क्षेत्र की शिक्षा संस्थाओं की कार्य प्रणाली तथा उनमें शिक्षा प्राप्त छात्र-छात्राओं की कार्य क्षमता व्यावहारिक कौशल, अभिवृत्तियों आदि का सूक्ष्म अवलोकन करने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे ही संस्थायें सफल विद्यालय कहलाने योग्य हैं जिन्हें कार्य-नियोजन, विद्यालय-प्रबंधन, मार्गदर्शन तथा नेतृत्व कौशल से संपन्न प्रधानाचार्य प्राप्त है।

इस प्रसंग में यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि क्यों न सभी विद्यालयों को उत्कृट कोटि के प्रबंधन एवं मानवीय कौशलों से युक्त प्रधानाचार्य उपलब्ध करा दिये जाएँ

* शोधार्थी (एस.आर.एफ.)-शिक्षा संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
** असिटेंट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

जिससे सभी शिक्षा संस्थाओं की कार्य प्रणाली समुन्नत स्तर की ही सके। सुयोग्य प्रधानाचार्यों की पहचान, चयन तथा पदस्थापन के संबंध में यदि व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया जाये तो यह कार्य वांछनीयता की दृष्टि से जितना सहज एवं स्वाभाविक लगता है, क्रियान्वयन की दृष्टि से उतना ही जटिल तथा कठिन है।

प्रधानाचार्य सौरमंडल की ऐसी अद्‌भुत शक्ति के समान है, जिसके चारों ओर सभी अध्यापक ग्रहों की भाँति कार्यरत रहते हुये अपने कार्य को पूरा करते हैं तथा प्रधानाचार्य ही विद्यालयों में प्रशासन का अधिष्ठाता है इसीलिये उसकी तुलना विद्यालय के मुख्य व्यक्ति से की जाती है।

किसी भी विद्यालय या शैक्षिक संस्था को अपने निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति की ओर अग्रसारित करने में विद्यालय प्रधानाचार्यों का कुछ प्रबंधन तथा मानवीय कौशलों में निुपण होना अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीन समय में विद्यालय सरल तथा छोटे संगठन होते थे परन्तु वर्तमान आर्थिक युग में विद्यालय विस्तृत तथा जटिल संगठनों के रूप में उभर कर आये हैं तथा इनके कार्यों में भी वृद्धि हो गयी है। अब विद्यालयों का कार्य केवल शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का संचालन करना ही नहीं है परन्तु छात्रों के सर्वांगीण विकास हेतु अनेक क्रिया-कलापों का भी संचालन करना है। अत: स्वीकरोक्ति है कि प्रधानाचार्य शिक्षण-अधिागम प्रक्रिया के संचालन एवं संपादन में एक महत्वपूर्ण कारक है और उसका व्यक्तित्व पूरे विद्यालय प्रबंधन तथा शिक्षकों की कार्य-शैली के साथ-साथ विद्यालयी संस्थागत निष्पादन को प्रभावित करता है अत: प्रभावी विद्यालय प्रबंधन हेतु प्रधानाचार्यों में निम्नांकित प्रबंधन एवं मानवीय कौशलों का होना नितांत आवश्यक है-

प्रबंधन कौशल

सम्प्रत्यात्मक रूप से 'कौशल' शब्द से तात्पर्य किसी विशिष्ट कार्य को सफलतापूर्वक पूर्ण करने की योग्यता से है। यह एक अर्जित या सीखी हुई योग्यता है जो ज्ञान को कार्य के रूप में रूपान्तरित करती है। यहाँ पर यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि अकेला मनुष्य सभी कार्यों में पारंगत नहीं हो सकता है और वहीं पर कौशलों का स्थान सबसे महत्वपूर्ण हो जाता है। क्योंकि यदि व्यक्ति में योग्यता संबंधी समस्या है, तो इसका निराकरण विशिष्ट प्रशिक्षण एवं कोचिंग आदि के माध्यम से किया जा सकता है, परन्तु कौशलों के

विकास के लिए व्यक्ति में एक अभिवृत्ति होना आवश्यक है। एक शैक्षिक प्रशासक के रूप में विद्यालय प्रधानाचार्य को विद्यालयी संस्थितियों हेतु अनेक निर्णय, नेतृत्व, मूल्यांकन एवं संप्रेषण आदि परस्पर करने पड़ते हैं, इन विभिन्न कार्यों हेतु प्रधानाचार्यों को अनेक प्रबंधन कौशलों से युक्त होना पड़ेगा जिनमें प्रमुख कौशल निम्नांकित हैं–

नेतृत्व कौशल

यदि तेजी से विस्तार करने वाले संगठन एवं अप्रभावी संगठनों के मध्य अन्तर का कोई एक कारण हो तो इसे चमत्कारी और प्रभावी नेतृत्व की संज्ञा दी जा सकती है। विद्यालयी संस्थितियों में प्रधानाचार्य एक नेता होता है, विद्यालय की समग्र गतिविधियाँ उसी के नेतृत्व पर आधारित होती हैं एवं प्रधानाचार्य को ऐसे व्यक्तियों का नेतृत्व करना होता है जो शैक्षिक योग्यता में प्रायः समान होते हैं तथा संगठन के कार्मिकों की मूल्य व्यवस्था, संज्ञान और अभिवृत्तियों में अन्तर होने के कारण एक ही संगठन के लोग भिन्न प्रकार के व्यवहार करते हैं। इन समस्त विभिन्न प्रयासों को एक ही दिशा में अग्रसर करने के लिये प्रधानाचार्य को नेतृत्व कौशलों से युक्त होना आवश्यक है।

निर्णयन कौशल

प्रधानाचार्य को विद्यालय प्रबंधन के संबंध में नये-नये अनेक शैक्षिक, सह-शैक्षिक कार्यों के संबंध में परस्पर निर्णय लेने होते हैं। प्रत्येक कार्य का निष्पादन करने हेतु प्रधानाचार्य के सम्मुख कई विकल्प होते हैं। इन समस्त उपलब्ध विकल्पों में से शिक्षण संस्था द्वारा निर्धारित उद्देश्यों की सम्पूर्ति में जो श्रेष्ठतम् होता है उसी का चयन करने हेतु प्रभावी कार्यान्वयन करने की मानसिक इच्छा शक्ति के आधार पर प्रधानाचार्य को लगातार निर्णय लेने होते हैं। ऐसी स्थिति में यदि प्रधानाचार्य निर्णय लेने के कौशलों में दक्ष है तभी वह जटिल से जटिल समस्याओं को स्वयं या आवश्यकतानुसार सहयोगियों के साथ सामूहिक निर्णय के आधार पर निपटा सकता है।

सम्प्रेषण कौशल

प्रबंधन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग संचार-सम्प्रेषण है। इसके अन्तर्गत परस्पर समूहों में सूचनायें विचार स्पष्टीकरण, प्रश्नोत्तर आदि का संचार किया जाना है। यह व्यक्तियों के मध्य परस्पर सम्पर्क का साधान है। इसके द्वारा ऊपरी तथा निम्न स्तर के कार्यकर्ता एवं समान स्तर पर कार्य करने वाले कार्यकर्ता परस्पर सम्पर्क स्थापित कर

सकते हैं। यह एक ऐसा साधान है, जिसके द्वारा संबंध बनते तथा बिगड़ते हैं। प्रधानाचार्य तब तक कार्मिकों के मध्य समन्वय स्थापित नहीं कर सकता, जब तक कि वह प्रभावी सम्प्रेषण द्वारा उनमें समन्वय स्थापित नहीं करता। उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये कभी उसे सूचनायें, कभी निर्देश, कभी आदेश आदि देने पड़ते हैं एवं यह सभी प्रभावी सम्प्रेषण द्वारा ही सम्भव है।

नियोजन एवं संगठन कौशल

नियोजन शब्द आते ही हमारे मन में भविष्य की एक तस्वीर बनती है और इसमें समय के अनुरूप आगे बढ़ने की प्रक्रिया निहित होती है। संस्था या विद्यालय के निर्धारित उद्देश्यों को कार्यरूप में परिवर्तित करने हेतु नियोजन की आवश्यकता होती है इसलिये नियोजन का अर्थ कब, कौन सा कार्य, कैसे, कहाँ और कौन करेगा इसके निर्धारण से लिया जा सकता है। नियोजन संगठन के लक्ष्यों के निर्धारण एवं इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये निर्धारित सभी रणनीतियों से संबंध रखता है। अत: यह लक्ष्य (क्या किया जाना है) तथा साधन (कैसे किया जाना है) दोनों से संबंध रखता है। इसके साथ ही प्रधानाचार्य का एक महत्वपूर्ण दायित्व यह है कि वह संगठन के उद्देश्यों के अनुरूप संगठन में कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों की शक्ति को इस प्रकार संयोजित करे कि प्रभावपूर्ण तरीके से उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके। इसलिये संस्था प्रमुख का नियोजन कौशलों में निपुण होना नितांत आवश्यक है।

कार्मिक प्रबंधन कौशल

कार्मिक प्रबंधन कौशल जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि संगठन में दूसरों के साथ कार्य करने की योग्यता और संगठन से संबंधित सभी कार्मिकों को प्रबन्धित करने एवं कार्य समूह में स्थित लोगों का सहयोग प्राप्त करने की क्षमता का नाम है। यह कौशल आपसी समझ, धैर्य, विश्वास और अन्तर्वैयक्तिक संबंधों में वास्तविक सहभागिता को शामिल करता है जो कि प्रत्येक स्तर के शैक्षिक प्रबंधकों के लिये आवश्यक है क्योंकि आधुनिक कार्यस्थलों में प्रजातिक भिन्नता बढ़ रही है। अत: इस कौशल का सांबंधिक महत्व प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

मूल्यांकन कौशल

मूल्यांकन एक सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का प्रयोग हम

जीवन में निरंतर करते रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की प्रतिक्रिया एवं व्यवहार का मूल्यांकन करता है। इसके अतिरिक्त वह अन्य व्यक्तियों में उत्पन्न हुये व्यावहारिक परिवर्तनों के आधार पर अपने कार्यों का मूल्यांकन करता है। चूंकि विद्यालय एक शैक्षिक संस्था है इसलिये इसमें जो भी मूल्यांकन किये जायेंगे वह सभी सम्पूर्ण शैक्षिक व्यवस्था को प्रभावित करेंगे। अत: विद्यालय प्रधानाचार्य के लिये मूल्यांकन कौशलों में दक्ष होना अत्यन्त आवश्यक है एवं मूल्यांकन की विभिन्न विधियों एवं प्रविधियों का ज्ञान होना भी महत्वपूर्ण है।

विरोध प्रबंधन कौशल

विरोध जीवन की वास्तविकता है। मनुष्य को अपने जीवन के सभी क्षेत्रों यथा – परिवार, सामाजिक जीवन, राजनीति तथा व्यापार आदि में विरोध का सामना करना पड़ता है। सभी स्तरों पर शैक्षिक प्रबंधकों (प्रधानाचार्यों) को भी अनेक प्रकार की विरोधी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। यह विरोध, प्रबन्धक तथा कर्मचारियों के मध्य हो सकता है, कर्मचारियों में आपस में हो सकता है तथा अपने संस्थान तथा अन्य संस्थानों के मध्य हो सकता है। सत्य तो यह है कि शिक्षा के क्षेत्र में विरोध संस्थागत जीवन का एक सामान्य अंग बन गया है और इसका परिणाम है कि शैक्षिक प्रशासकों का अधिकांश समय इन विरोधें से उत्पन्न हुई समस्याओं का समाधान करने में व्यर्थ चला जाता है तथा उसके पास रचनात्मक नियोजन एवं विकासात्मक कार्यों के लिये बहुत कम समय बचता है। कुछ विरोध क्रियात्मक (Functional) भी होते हैं एवं किसी नवीन दिशा को जन्म देते हैं। जहाँ विरोध अक्रियात्मक (Dysfunctional) होते हैं, वहाँ अधिकांश स्थितियों में प्रबंधन तथा कर्मचारी विरोधी परिस्थितियों के प्रति या तो विनिवर्तित (withdrawing) व्यवहार के रूप में अथवा परिस्थिति के साथ लड़ने के रूप में प्रतिक्रिया करते हैं। दोनों ही परिस्थितियों में परिणाम अनेक रूपों में हानिकारक होते हैं। अत: अब इस बात पर बल दिया जाने लगा है कि शैक्षिक प्रब्रधकों के लिये संस्थागत विरोधें के स्वरूप तथा प्रबंधन से संबंधित ज्ञान तथा कौशल की आवश्यकता है।

मानवीय कौशल

किसी भी शैक्षिक संस्था का प्रधानाचार्य सबसे पहले एक मनुष्य है। अत: उसे स्वयं को एक आदर्श मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करना अत्यन्त आवश्यक होता है जिससे कि उसका

अनुसरण विद्यालय के अन्य कार्मिक कर सकें। प्रधानाचार्य को कई प्रकार के संबंधों में रहकर कार्य करना होता है इसीलिये उसमें व्यावसायिक एवं प्रशासनिक गुणों के साथ-साथ कुछ मानवीय गुणों या कौशलों का होना अत्यन्त आवश्यक है–

चरित्रवान

चरित्र प्रत्येक मनुष्य का नितांत व्यक्तिगत गुण है, परन्तु विद्यालय प्रधानाचार्य का चरित्र निजी सम्पत्ति की अपेक्षा सार्वजनिक महत्व का अधिक होता है। प्रधानाचार्य के विशुद्ध चरित्र एवं आचरण से जहाँ एक ओर शिक्षक भयमुक्त होकर शिक्षण कार्य करते हैं, वहीं दूसरी ओर प्रधानाचार्य के आदर्श चरित्र एवं आचरण को जाने अनजाने में शिक्षक अपनी जीवन शैली में भी समाविष्ट करने की चेष्टा करते हैं। यदि प्रधानाचार्य स्वयं चरित्रवान होकर आदर्श प्रस्तुत करता है तो उसका यह शुद्ध लोकाचरण प्रत्यक्ष रूप से शिक्षक के लोक व्यवहार में प्रफुल्लता तथा शिक्षण सम्पादन क्षमता की स्थापना में सहायक होता है।

कुशल प्रेरणादायक

एक प्रधानाचार्य में अपने आस-पास कार्मिकों के समूह में आत्मविश्वास बढ़ाने के गुण होने चाहिये। ये गुण कुछ इस तरह के हो सकते हैं कि वह शिक्षकों के विद्यालय व समुदाय के जुड़ाव को और उनके द्वारा किये गये कार्य के सकारात्मक पहलुओं की चर्चा करके प्रोत्साहित कर सकता है। प्रेरणा एक प्रकार की भावनात्मक शक्ति है जो लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये बल प्रदान करती है। प्रेरणा एक ऐसी शक्ति है जो क्षमताओं के विकास के लिये आवश्यक है। प्रधानाचार्य में सहयोगियों को आन्तरिक एंव बाह्य अभिप्रेरणा के माध्यम से प्रेरित करने का गुण होना चाहिये ताकि वे गुणों से प्रेरित होकर अपने कार्य को उचित प्रकार से कर सकें।

कार्यशील

विद्यालय शैक्षिक प्रक्रिया की एक आधारभूत संगठनात्मक इकाई है और प्रधानाचार्य इसका केन्द्र बिन्दु। संस्था प्रमुख को विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञाता होने के साथ व्यावहारिक होना भी आवश्यक है। वह जिन सिद्धांतों एवं आदर्शों को अपने छात्रों एवं सहयोगियों के समक्ष रखता है यदि वह उनके अनुसार स्वयं कार्य नहीं करता तो वह उनका सफल नेतृत्व करने में असमर्थ रहेगा।

प्रधानाचार्य की कार्यशैली न तो पानी की लकीर के समान मुलायम होनी चाहिये और न पत्थर की लकीर के समान कठोर, बल्कि बालू की लकीर के समान प्रासंगिक होनी चाहिये ताकि कामचोर से काम लिया जा सके तथा कर्मठ को पुरस्कृत किया जा सकता है।

मानवीय संबंध स्थापित करने की क्षमता

लोक व्यवहार मानव का स्थाई गुण नहीं हैं क्योंकि लोक व्यवहार शैली, समय, स्थान, भौतिक पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में बनता-बिगड़ता रहता है। विद्यालय प्रधानाचार्य से यह अपेक्षा की जाती है कि उनका लोक व्यवहार भौतिक पर्यावरण से प्रभावित न हो तथा व्यवहार निष्पक्ष होना चाहिये। प्रधानाचार्य में मानवीय संबंध स्थापित करने की योग्यता का होना परम् आवश्यक है क्योंकि उसे नित नये लोगों से परस्पर मिलना होता है तथा सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करने होते हैं। इसलिये प्रधानाचार्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने सहयोगी अध्यापक मंडल तथा कर्मचारियों से मित्रवत सम्पर्क बनाये। विद्यालय की समस्त क्रियाओं का आयोजन छात्रों के लिये होता है, अतः छात्रों की उपेक्षा करना प्रधानाचार्य के लिये अशोभनीय है। इसलिये छात्रों के साथ अधिक से अधिक सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करने चाहिये।

अच्छा सुनने वाला

प्रधानाचार्य में किसी भी बात या समस्या को धैर्यपूर्वक तथा ध्यान से सुनने की क्षमता होनी चाहिये क्योंकि जब तक वह सभी बातों को पूर्ण रूप से नहीं सुनेगा, तब तक वह उस कार्य या समस्या के सन्दर्भ में उचित निर्णय नहीं ले पायेगा। इसलिये एक प्रधानाचार्य को अच्छा वक्ता होने के साथ-साथ अच्छा सुनने वाला भी होना चाहिये। साथ ही साथ उसमें बात को सुनकर स्थिति/घटना के सकारात्मक पहलुओं, उससे उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों एवं कारणों को समझ पाने की क्षमता का होना भी आवश्यक है।

अनुशासन प्रिय

एक कुशाल प्रशासक अपने सद्व्यवहार से सहयोगियों का विश्वास प्राप्त कर अधिकारों का प्रयोग संस्था और उससे संबंधित समूह के हित में करता है। किसी संस्था की कार्य प्रणाली को सुदृढ़ बनाने के लिये नियमों का पालन तथा अनुशासन परम आवश्यक है

क्योंकि अनुशासन की अनुपस्थिति में स्वतंत्रता तथा अधिकारों का दुरुपयोग होना स्वाभाविक है। अत: प्रधानाचार्य के लिये यह आवश्यक है कि वह स्वयं अनुशासन एवं नियमों का पालन करते हुये एक ऐसी विश्वसनीयता अपने सहयोगियों के बीच उत्पन्न करे कि उसका अनुशासित एवं संतुलित आचरण उस पूरे समूह के लिये अभिप्रेरित करने वाला हो।

लोकतांत्रिक दृष्टिकोण

वर्तमान समय के अध्यापक प्रजातांत्रिक वातावरण में कार्य करना चाहते हैं। अत: प्रधानाचार्य को विद्यालय, प्रशासन, छात्रों व समुदाय के मध्य सामंजस्य स्थापित कर अपना कार्य सम्पादित करना होता है। अत: उसे संस्था के प्रत्येक कार्य में सहयोगी कार्मिकों (अध्यापकों) की भावनाओं, विचारों का आदर करना चाहिये। वह स्वतंत्रता, समानता, महत्व एवं न्यायप्रियता में पूर्णतया विश्वास करने वाला हो, तभी वह संस्था संबंधित सभी निर्णय लोकतांत्रिक आधार पर ले सकेगा तथा संस्था लोकतांत्रिक वातावरण से परिपूर्ण होगी।

समय प्रबंधन

प्रधानाचार्य अपने लक्ष्य को ध्यान में रखते हुये उपलब्ध संसाधनों के आधार पर समस्त क्रियाओं को सही ढंग से क्रमायोजित सम्पादित करें तो प्रत्येक कार्य के लिये आवश्यक समय उपलब्ध हो जाता है और उस कार्य के सफलतापूर्वक पूर्ण होने की सम्भावनायें भी शत् प्रतिशत् हो ही जाती हैं क्योंकि समय एक महत्वपूर्ण संसाधन है। विद्यालय में समय प्रबंधन विद्यालय के प्रत्येक कार्य से जुड़ा (पाठ्यक्रम को सही समय पर पूरा करना, समय पर मूल्यांकन करना, परिणाम घोषित करना, छात्रवृत्ति का समय पर वितरण आदि) होता है। अत: इसका समुचित प्रबंधन कर प्रधानाचार्य कार्य को सही ढंग से करने के साथ-साथ धन, श्रम और ऊर्जा का अपव्यय रोक सकता है।

निष्ठावान

संस्था प्रमुख का विशुद्ध आचरण जहां एक ओर विद्यालय अधिगम वातावरण के निर्माण तथा शिक्षकों की कार्यक्षमता को बढ़ाने में सहायक होता है, वहीं उनका निष्ठावान होना भी परमावश्यक है। यदि उनकी अपने व्यवसाय में निष्ठा नहीं होगी तो वह अपने कर्त्तव्य एवं दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वहन करने में असमर्थ रहेंगे।

अत: प्रधानाचार्य को अपने व्यवसाय, शिक्षकों, छात्रों तथा समाज के प्रति निष्ठा रखना आवश्यक है। इस निष्ठा के अभाव में वह सफलतापूर्वक नेतृत्व भी नहीं प्रदान कर सकता है।

परिणामों के प्रति संवेदनशील

प्रधानाचार्य का अंतिम उद्देश्य जहां वह कार्यरत है, उस संस्था में अपने कार्यों के माध्यम से शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता देना है। अत: संस्था प्रमुख को लक्ष्यों को ध्यान में रखकर अपने सहयोगियों का सफल मार्गदर्शन करना चाहिये तथा लगातार अपने लक्ष्य के प्रति संवेदनशील रहना चाहिये। प्रधानाचार्य को लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये अपने सहयोगियों को मार्गदर्शन देने के साथ ही प्रोत्साहित भी करना चाहिये क्योंकि यदि प्रधानाचार्य मार्गदर्शन देता है तथा उनकी सफलताओं की सराहना करता है तो वह अपने लक्ष्यों को सामूहिक सहयोग से आसानी से प्राप्त कर सकता है। इसके साथ ही प्रधानाचार्य में कार्यक्षेत्र में आने वाली समस्याओं को अनेक दृष्टियों से देख पाने की क्षमता हो अर्थात् वह शिक्षक के दृष्टिकोण से भी उस समस्या को देखने का प्रयास करे जो शिक्षकों से संबद्ध हैं।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन एवं विवेचन से स्पष्ट है कि किसी भी विद्यालय का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उसके प्रमुख पर होता है। अर्थात् प्रधानाचार्य ही वह केन्द्र बिन्दु है जिसके दिशा-निर्देशन में विद्यालय की सम्पूर्ण गतिविधियां संचालित होती हैं। विद्यालय की समस्त गतिविधियों के विधिवत संचालन एवं गुणवत्तापूर्ण संस्थागत निष्पादन को सुनिश्चित करने में प्रधानाचार्यों को कुछ प्रबंधन एवं मानवीय कौशलों में दक्ष होना अत्यन्त आवश्यक है। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कोई भी व्यक्ति परिपूर्ण (Perfect) नही होता फिर भी इस बात की नितांत आवश्यकता है कि विद्यालय प्रधानाचार्य या संस्था प्रमुख कुछ विशिष्ट गुणों से परिपूर्ण हो जिससे कि वह विद्यालय प्रबंधन संबंधी कार्यो में विविधता एवं विशिष्टता ला सके जिससे कि विद्यालय, समाज तथा देश का हित हो। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रधानाचार्यों को प्रस्तुत शोध-पत्र में विवेचित प्रबंधन तथा मानवीय कौशलों (गुणों) से युक्त होना नितांत आवश्यक है।

संदर्भ

अभिनव, राज्य शैक्षिक प्रबंधन एवं प्रशिक्षण संस्थान (सीमेंट), इलाहाबाद, उ.प्र., अंक-26, मई-जुलाई 2003, पृ.-40-45

व्यास हरिश्चन्द्र, व्यास कैलाश चन्द्र (1996), शैक्षिक प्रबंध और शिक्षा की समस्यायें, आर्य बुक डिपो, दिल्ली, प्रथम संस्करण पृ. 63-80

अग्रवाल अर्चना, गोडबोले अर्पणा, (2009), शैक्षिक प्रशासन प्रबंधन एवं स्वास्थ्य शिक्षा, आलोक प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण, पृ. 147-155

श्रीवास्तव, शंकर शरण, (2010), परंपरागत भारतीय शिक्षा व्यवस्था एवं प्रबंधन, भारतीय शिक्षा शोध संस्थान, लखनऊ,

वर्मा, जे.पी. (2008) शैक्षिक प्रबंधन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, चतुर्थ संस्करण,

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 19, अंक 1, अप्रैल 2012

अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुणों का तुलनात्मक अध्ययन

धर्मराज सिंह* एवं **बबिता सिंह****

बाल्य-काल कल्पनाशील होता है। बाल कल्पना सरल, उर्वर एवं विविध रंगी तो है किन्तु उसका एक विशिष्ट गुण सहज विश्वासी होना है। बालक की स्वच्छ, निर्मल कल्पना किसी बात पर सहज विश्वास कर लेती है। असंभव घटनायें भी उसे प्रभावित करती हैं, वह अनर्गल चित्रों को भी अभिनंदनीय मान बैठता हैं जिस किसी बात में उनकी कल्पना को प्रेरित एवं स्फुटित करने की अदम्य शक्ति होती है, वह उनके लिए रूचिकर है। सही-गलत का निर्णय करने का विवेक उनमें नहीं होता और न ही वास्तविकता को पहचानने के लिए अनुभव उनके पास होता है। जब बालक समाज के नियमों, परंपराओं, मर्यादाओं आदि का उल्लंघन करता है, अर्थात् समाज विरोधी व्यवहार करता है तो उसके व्यवहार को बाल अपराध कहते हैं। सामान्यत: बालक के समाज विरोधी कार्य एवं व्यवहार को ही बाल अपराध कहा जाता है। प्रत्येक बालक के व्यवहार में चंचलता, हठवादिता और शैतानी का पुट अवश्य होता है, परन्तु उसका यह व्यवहार जब निर्धारित मानदंडों को लाँघने लगता है, तब उसे अपराधी की संज्ञा दी जाती है। एस. चन्द्र (1967) के अनुसार ''यह शैतानी जब एक ऐसी आदत के रूप में विकसित हो जाती है, जो कि समाज द्वारा प्रतिष्ठित व्यवहार प्रतिमान की सीमाओं को पार कर जाती है और उससे जो व्यवहार उभर कर आता है उसे ही बाल-अपराध कहा जाता है।'' इस शोध में बाल अपराधियों को मुख्य दो भागों में बाँटा गया है। सामान्य बाल अपराधी - ऐसे बालक जो समाज में मारपीट करने, शान्ति भंग करने, गाड़ी चलाते समय टक्कर मारने, अश्लील गानें, झूठ बोलने इत्यादि कार्य को करते हैं, उन्हें सामान्य बाल अपराधी कहा जाता है। गम्भीर बाल अपराधी - ऐसे बालक जो समाज में चोरी, अपहरण, लूटपाट, बलात्कार, हत्या इत्यादि कार्य को करते हैं उन्हें गम्भीर बाल अपराधी कहा जाता है। अपराधी

* प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
** शोधछात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

बालकों के व्यक्तित्व को अधिक प्रभावी बनाने में पूर्व में कुछ अध्ययन हुए हैं जिनका विवरण निम्न है–

पेसवर्क (1971) ने अपने अध्ययन में अपराधी तथा सामान्य किशोरों के व्यक्तित्व विषमता में सार्थक अन्तर पाया। सिंह (1982) ने जनजाति बाल अपराधी और सामान्य बालकों के सी, आई, क्यू, क्यू$_3$, और क्यू$_4$ के व्यक्तित्व कारक में भिन्न पाये गये। शर्मा, गुन्थे एवं सिंह (1982) ने बाल अपराधी एवं सामान्य बालकों के व्यक्तित्व सहवर्तिता का अध्ययन किया जिसमें बाल अपराधी सामान्य बालकों की अपेक्षा अधिक कुंठित, आश्रित, हठधर्मी, कम बुद्धि तथा अधिक आक्रामक व्यवहार वाले पाये गये। सुषमा (1990) ने बाल अपराधी तथा बालिका अपराधी के व्यक्तित्व कारक में कोई अन्तर नहीं पाया। सिंह एवं उपाध्याय (2007) ने अपराधी एवं गैर अपराधी प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन किया, जिसमें अधिकतर अपराधी कम बुद्धिमान, सांवेगिक अस्थिरता, अविश्वासी, नवीनता से दूर, अधिक तनावपूर्ण प्रकृति वाले पाये गये।

शोधकर्त्री ने उपर्युक्त अध्ययन के उपरान्त यह अनुभव किया कि इन विन्दुओं को ध्यान में रखकर शोध करने की आवश्यकता है, जिससे बाल अपराधियों के व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास किया जा सके तथा साथ ही बालकों को सही दिशा निर्देश दिया जा सके।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

- सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुणों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना

उपर्युक्त उद्देश्य की प्राप्ति हेतु निम्नलिखित परिकल्पना का निर्माण किया गया है–

- सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुणों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

इस अध्ययन के लिए निम्न उप–परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है।

(i) सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण गम्भीर बनाम सहृदय में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

(ii) सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण अल्प बुद्धिमान बनाम अधिक बुद्धिमान में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

(iii) सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण भावनाओं से प्रभावित होने वाला बनाम भावनात्मक रूप से स्थिर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

(iv) सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण अप्रदर्शनात्मक बनाम उत्तेजनीय में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

(v) सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण आज्ञाकारी बनाम दृढ़ में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

(vi) सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण गम्भीर बनाम उत्साही में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

(vii) सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण नियमों का सम्मान न करना बनाम कर्तव्यनिष्ठ में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

(viii) सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण संकोची बनाम साहसी में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

(ix) सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण दृढ़ विचार वाला बनाम कोमल विचार वाला में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

(x) सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण जोशीला बनाम व्यक्तित्व के प्रति सावधान में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

(xi) सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण आत्मविश्वासी बनाम् आशंकित में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

(xii) सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण सामाजिक रूप से समूह पर निर्भर बनाम आत्मनिर्भर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

(xiii) सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण अनियंत्रित बनाम् नियंत्रित में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

(xiv) सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण सहज बनाम व्यग्र में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन विधियाँ एवं न्यायदर्श

प्रस्तुत शोध कार्य में वर्णनात्मक अनुसन्धान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है तथा यादृच्छिक न्यायदर्श विधि द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित लखनऊ, वाराणसी तथा इलाहाबाद में स्थित सरकारी बाल सुधार गृहों में नामांकित बाल अपराधियों को चयनित किया गया है जिसमें लखनऊ के बाल सुधार गृह से 85, वाराणसी के बाल सुधारगृह से 51, इलाहाबाद के बाल सुधार गृह से 80 बाल अपराधियों को गुच्छ यादृच्छिक न्यायदर्श विधि से चयनित किया गया है। इस प्रकार कुल 216 बाल अपराधियों को अध्ययन के न्यायदर्श के रूप में लिया गया है।

उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में उद्देश्यों की अभिपूर्ति के लिए निम्न उपकरण का प्रयोग किया गया है।

- हाईस्कूल व्यक्तित्व प्रश्नावली (कैटेल द्वारा निर्मित, हिन्दी संस्करण एस.डी. कपूर)

प्रयुक्त सांख्यिकीय प्रविधि

अध्ययन की प्रकृति एवं उद्देश्यों के आधार पर आये हुये आँकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन एवं टी अनुपात विधि का प्रयोग किया गया है।

परिणाम तथा विवेचन

समस्या से सम्बन्धित आँकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर परिणामों को प्राप्त किया गया है। प्रस्तुत शोध समस्या के उद्देश्यों पर आधारित परिकल्पनाओं के सम्बन्ध में निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए–

तालिका–1

सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण गम्भीर बनाम सहृदय की तुलना को दर्शाते हुए मध्यमान, मानक विचलन और टी अनुपात

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	टी–अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य अपराधी	3.47	1.71	3.07*	0.05 स्तर पर सार्थक
गम्भीर अपराधी	4.53	1.51		

*0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका 1 के परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी और गम्भीर अपराधी बालकों के लिए परिगणित टी अनुपात का मान 3.07 है। जो कि मुक्तांश (df)– 214 के 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित तालिका मान (1.96) से अधिक है। अत: 0.05 स्तर पर यह सार्थक है। अत: इस प्रकार शून्य परिकल्पना की अस्वीकृत करते हुए कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण गम्भीर बनाम सहृदय में सार्थक अन्तर पाया गया। इस प्रकार शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी बालकों का मध्यमान (3.47) तथा गम्भीर बालकों के मध्यमान (4.53) पाया गया। स्पष्ट है कि गम्भीर बाल अपराधियों का मध्यमान सामान्य बाल अपराधियों के मध्यमान की तुलना में अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी बालकों की तुलना में गम्भीर अपराधी बालक अधिक सहृदय पाये गये।

तालिका–2

सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण अल्प बुद्धिमान बनाम अधिक बुद्धिमान की तुलना को दर्शाते हुए मध्यमान, मानक विचलन और टी अनुपात

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	टी–अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य अपराधी	3.49	1.59	3.46*	0.05 स्तर पर सार्थक
गम्भीर अपराधी	5.09	1.57		

*0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका–2 के परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी और गम्भीर अपराधी बालकों के लिए परिगणित टी का मान 3.46 है। जो कि मुक्तांश (df)– 214 के 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित तालिका मान (1.96) से अधिक है। अत: 0.05 स्तर पर यह सार्थक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना अस्वीकृत करते हुए कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण अल्प बुद्धिमान बनाम

अधिक बुद्धिमान में सार्थक अन्तर पाया गया। अत: शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी बालकों का मध्यमान (3.49) तथा गम्भीर अपराधी बालकों का मध्यमान (5.09) पाया गया। स्पष्ट है कि गम्भीर बाल अपराधियों का मध्यमान सामान्य बाल अपराधियों के मध्यमान से अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी बालकों की तुलना में गम्भीर अपराधी बालक अधिक बुद्धिमान पाये गये।

तालिका-3

सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण भावनाओं से प्रभावित होने वाला बनाम भावनात्मक रूप से स्थिर की तुलना को दर्शाते हुए मध्यमान, मानक विचलन और टी अनुपात

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	टी-अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य अपराधी	3.91	1.49	2.66*	0.05 स्तर पर सार्थक
गम्भीर अपराधी	4.85	1.34		

*0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका-3 के परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी और गम्भीर अपराधी बालकों के लिए परिगणित टी अनुपात का मान 2.66 है। जो कि मुक्तांश (df)- 214 के 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित तालिका मान (1.96) से अधिक है। अत: 0.05 स्तर पर यह सार्थक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत करते हुए कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण भावनाओं से प्रभावित होने वाला बनाम भावनात्मक रूप से स्थिर में सार्थक अन्तर पाया गया। अत: शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी बालकों का मध्यमान (3.91) तथा गम्भीर अपराधी बालकों का मध्यमान (4.85) पाया गया। स्पष्ट है कि गम्भीर बाल

अपराधियों का मध्यमान सामान्य बाल अपराधियों के मध्यमान की तुलना में अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी बालकों की तुलना में गम्भीर अपराधी बालक अधिक भावनात्मक रूप से स्थिर पाये गये।

तालिका-4

सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण अप्रदर्शनात्मक बनाम उत्तेजनीय की तुलना को दर्शाते हुये मध्यमान, मानक विचलन और टी अनुपात

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	टी-अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य अपराधी	3.91	1.67	3.95*	0.05 स्तर पर सार्थक
गम्भीर अपराधी	4.86	1.66		

*0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका-4 के परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी और गम्भीर अपराधी बालकों के लिए परिगणित टी अनुपात का मान 3.95 है। जो कि मुक्तांश (df)- 214 के 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित तालिका मान (1.96) से अधिक है। अत: 0.05 स्तर पर यह सार्थक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत करते हुए कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण अप्रदर्शनात्मक बनाम उत्तेजनीय में सार्थक अन्तर पाया गया। इस प्रकार शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी बालकों का मध्यमान (3.91) तथा गम्भीर अपराधी बालकों का मध्यमान (4.86) पाया गया। स्पष्ट है कि गम्भीर बाल अपराधियों का मध्यमान सामान्य बाल अपराधियों के मध्यमान की तुलना में अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी बालकों की तुलना में गम्भीर अपराधी बालक अधिक उत्तेजनीय पाये गये।

तालिका-5

सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण आज्ञाकारी बनाम् आग्रही की तुलना को दर्शाते हुए मध्यमान, मानक विचलन और टी अनुपात

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	टी-अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य अपराधी	4.27	1.87	1.71	0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है
गम्भीर अपराधी	5.34	1.67		

0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका-5 के परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी और गम्भीर अपराधी बालकों के लिए परिगणित टी अनुपात का मान 1.71 है। जो कि मुक्तांश (df)- 214 के 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित तालिका मान (1.96) से कम है। अत: 0.05 स्तर पर यह असार्थक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अत: कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण आज्ञाकारी बनाम आग्रही व्यक्तित्व गुण में समान रूप से पाये गये।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी बालकों का मध्यमान (4.27) पाया गया और गम्भीर अपराधी बालकों का मध्यमान (5.34) पाया गया है। स्पष्ट है कि सामान्य तथा गम्भीर अपराधी बालकों के मध्यमान में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। अत: हम कह सकते हैं कि सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण आज्ञाकारी बनाम आग्रही में समान रूप से पाये गये।

तालिका-6

सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण गम्भीर बनाम् उत्साही की तुलना को दर्शाते हुये मध्यमान, मानक विचलन और टी अनुपात

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	टी-अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य अपराधी	3.82	1.31	4.95*	0.05 स्तर पर सार्थक
गम्भीर अपराधी	4.77	2.02		

*0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका-6 के परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी और गम्भीर अपराधी बालकों के लिए परिगणित टी अनुपात का मान 4.95 है। जो कि मुक्तांश (df)- 214 के 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित तालिका मान (1.96) से अधिक है। अत: 0.05 स्तर पर यह सार्थक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना अस्वीकृत करते हुए कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण गम्भीर बनाम उत्साही में सार्थक अन्तर पाया गया। अत: शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी बालकों का मध्यमान (3.82) तथा गम्भीर अपराधी बालकों का मध्यमान (4.77) पाया गया। स्पष्ट है कि गम्भीर बाल अपराधियों का मध्यमान सामान्य बाल अपराधियों के मध्यमान की तुलना में अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी बालकों की तुलना में गम्भीर अपराधी बालक अधिक उत्साही पाये गये।

तालिका-7

सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण नियमों का सम्मान न करना बनाम कर्तव्यनिष्ठ की तुलना को दर्शाते हुए मध्यमान, मानक विचलन और टी अनुपात

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	टी-अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य अपराधी	4.04	1.80	2.83*	0.05 स्तर पर सार्थक
गम्भीर अपराधी	5.77	1.09		

*0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका-7 के परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी और गम्भीर अपराधी बालकों के लिए परिगणित टी अनुपात का मान 2.83 है। जो कि मुक्तांश (df)- 214 के 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित तालिका मान (1.96) से अधिक है। अत: 0.05 स्तर पर यह सार्थक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना अस्वीकृत करते हुए कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण नियमों का सम्मान न करना बनाम कर्तव्यनिष्ठ में सार्थक अन्तर पाया गया। अत: शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी बालकों का मध्यमान (4.04) तथा गम्भीर अपराधी बालकों का मध्यमान (5.77) पाया गया। स्पष्ट है कि गम्भीर बाल अपराधियों का मध्यमान सामान्य बाल अपराधियों के मध्यमान की तुलना में अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी बालकों की तुलना में गम्भीर अपराधी बालक अधिक कर्तव्यनिष्ठ पाये गये।

तालिका-8

सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण संकोची बनाम साहसी की तुलना को दर्शाते हुए मध्यमान, मानक विचलन और टी अनुपात

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	टी-अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य अपराधी	4.29	1.87	2.34*	0.05 स्तर पर सार्थक
गम्भीर अपराधी	5.51	1.36		

*0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका-8 के परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी और गम्भीर अपराधी बालकों के लिए परिगणित टी अनुपात का मान 2.34 है। जो कि मुक्तांश (df)- 214 के 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित तालिका मान (1.96) से अधिक है। अत: 0.05 स्तर पर यह सार्थक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना अस्वीकृत करते हुए कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण संकोची बनाम साहसी में सार्थक अन्तर पाया गया। अत: शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी बालकों का मध्यमान (4.29) तथा गम्भीर अपराधी बालकों का मध्यमान (5.51) पाया गया। स्पष्ट है कि गम्भीर बाल अपराधियों का मध्यमान सामान्य बाल अपराधियों के मध्यमान की तुलना में अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी बालकों की तुलना में गम्भीर अपराधी बालक अधिक साहसी पाये गये।

तालिका-9

सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण दृढ़ विचार बनाम कोमल विचार की तुलना को दर्शाते हुये मध्यमान, मानक विचलन और टी अनुपात

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	टी-अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य अपराधी	3.47	1.60	4.42*	0.05 स्तर पर सार्थक
गम्भीर अपराधी	4.70	1.84		

*0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका-9 के परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी और गम्भीर अपराधी बालकों के लिए परिगणित टी अनुपात का मान 4.42 है। जो कि मुक्तांश (df)- 214 के 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित तालिका मान (1.96) से अधिक है। अत: 0.05 स्तर पर यह सार्थक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना अस्वीकृत करते हुए कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण दृढ़ विचार बनाम कोमल विचार में सार्थक अन्तर पाया गया। अत: शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी बालकों का मध्यमान (3.47) तथा गम्भीर अपराधी बालकों का मध्यमान (4.70) पाया गया। स्पष्ट है कि गम्भीर बाल अपराधियों का मध्यमान सामान्य बाल अपराधियों के मध्यमान की तुलना में अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी बालकों की तुलना में गम्भीर अपराधी बालक अधिक कोमल विचार वाले पाये गये।

तालिका-10

सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण जोशीला बनाम व्यक्तित्व के प्रति सावधान की तुलना को दर्शाते हुए मध्यमान, मानक विचलन और टी अनुपात

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	टी-अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य अपराधी	4.22	1.66	5.07*	0.05 स्तर पर सार्थक
गम्भीर अपराधी	5.23	1.91		

*0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका–10 परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी और गम्भीर अपराधी बालकों के लिए परिगणित टी अनुपात का मान 5.07 है। जो कि मुक्तांश (df)– 214 के 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित तालिका मान (1.96) से अधिक है। अत: 0.05 स्तर पर यह सार्थक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत करते हुए कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण जोशीला बनाम व्यक्तित्व के प्रति सावधान में सार्थक अन्तर पाया गया। अत: शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी बालकों का मध्यमान (4.22) तथा गम्भीर अपराधी बालकों का मध्यमान (5.23) पाया गया। स्पष्ट है कि गम्भीर बाल अपराधियों का मध्यमान सामान्य बाल अपराधियों के मध्यमान की तुलना में अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी बालकों की तुलना में गम्भीर अपराधी बालक व्यक्तित्व के प्रति अधिक सावधान पाये गये।

तालिका–11

सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण आत्मविश्वासी बनाम आशंकित की तुलना को दर्शाते हुए मध्यमान, मानक विचलन और टी अनुपात

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	टी–अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य अपराधी	4.02	1.58	3.07*	0.05 स्तर पर सार्थक
गम्भीर अपराधी	5.07	1.27		

*0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका 11 के परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी और गम्भीर अपराधी बालकों के लिए परिगणित टी अनुपात का मान 3.07 है। जो कि मुक्तांश (df)– 214 के 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित तालिका मान (1.96) से अधिक है। अत: 0.05 स्तर पर यह सार्थक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना अस्वीकृत करते हुए कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण आत्मविश्वासी बनाम् आशंकित में सार्थक अन्तर पाया गया। अत: शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी बालकों का मध्यमान (4.02) तथा गम्भीर अपराधी बालकों का मध्यमान (5.07) पाया गया। स्पष्ट है कि गम्भीर बाल अपराधियों का मध्यमान सामान्य बाल अपराधियों के मध्यमान की तुलना में अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी बालकों की तुलना में गम्भीर अपराधी बालक अधिक आशंकित पाये गये।

तालिका-12

सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण सामाजिक रूप से समूह पर निर्भर बनाम् आत्मनिर्भर की तुलना को दर्शाते हुए मध्यमान, मानक विचलन और टी अनुपात

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	टी-अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य अपराधी	3.59	1.48	5.54*	0.05 स्तर पर सार्थक
गम्भीर अपराधी	5.04	1.41		

*0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका-12 के परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी और गम्भीर अपराधी बालकों के लिए परिगणित टी अनुपात का मान 5.54 है। जो कि मुक्तांश (df)- 214 के 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित तालिका मान (1.96) से अधिक है। अत: 0.05 स्तर पर यह सार्थक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत करते हुए कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण सामाजिक रूप से समूह पर निर्भर बनाम आत्मनिर्भर में सार्थक अन्तर पाया गया। अत: शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी बालकों का मध्यमान (3.59) तथा गम्भीर अपराधी बालकों का मध्यमान (5.04) पाया गया। स्पष्ट है कि गम्भीर बाल अपराधियों का मध्यमान सामान्य बाल अपराधियों के मध्यमान की तुलना में अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी बालकों की तुलना में गम्भीर अपराधी बालक अधिक आत्मनिर्भर पाये गये।

तालिका-13

सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण अनियंत्रित बनाम् नियंत्रित की तुलना को दर्शाते हुए मध्यमान, मानक विचलन और टी अनुपात

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	टी-अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य अपराधी	3.65	1.47	3.76*	0.05 स्तर पर सार्थक
गम्भीर अपराधी	4.57	1.35		

*0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका-13 के परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी और गम्भीर अपराधी बालकों के लिए परिगणित टी अनुपात का मान 3.76 है। जो कि मुक्तांश (df)- 214 के 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित तालिका मान (1.96) से अधिक है। अत: 0.05 स्तर पर यह सार्थक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत करते हुए कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण अनियंत्रित बनाम नियन्त्रित में सार्थक अन्तर पाया गया। अत: शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी बालकों का मध्यमान (3.65) तथा गम्भीर अपराधी बालकों का मध्यमान (4.57) पाया गया। स्पष्ट है कि गम्भीर बाल अपराधियों का मध्यमान सामान्य बाल अपराधियों के मध्यमान की तुलना में अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी बालकों की तुलना में गम्भीर अपराधी बालक अधिक नियन्त्रित पाये गये।

तालिका-14

सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण सहज बनाम व्यग्र की तुलना को दर्शाते हुए मध्यमान, मानक विचलन और टी अनुपात

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	टी-अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य अपराधी	3.90	1.67	2.12*	0.05 स्तर पर सार्थक
गम्भीर अपराधी	5.46	1.11		

*0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका–14 के परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी और गम्भीर अपराधी बालकों के लिए परिगणित टी अनुपात का मान 2.12 है। जो कि मुक्तांश (df)– 214 के 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित तालिका मान (1.96) से अधिक है। अत: 0.05 स्तर पर यह सार्थक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना अस्वीकृत करते हुए कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी तथा गम्भीर अपराधी बालकों के व्यक्तित्व गुण सहज बनाम व्यग्र में सार्थक अन्तर पाया गया। अत: शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य अपराधी बालकों का मध्यमान (3.90) तथा गम्भीर अपराधी बालकों का मध्यमान (5.46) पाया गया। स्पष्ट है कि गम्भीर बाल अपराधियों का मध्यमान सामान्य बाल अपराधियों के मध्यमान की तुलना में अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामान्य अपराधी बालकों की तुलना में गम्भीर अपराधी बालक अधिक व्यग्र पाये गये।

निष्कर्ष

i. सामान्य बाल अपराधी तथा गम्भीर बाल अपराधियों के व्यक्तित्व गुण गम्भीर बनाम सहृदय में सार्थक अन्तर पाया गया। परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य बाल अपराधियों की तुलना में गम्भीर बाल अपराधी अधिक सहृदय पाये गये।

ii. सामान्य बाल अपराधियों तथा गम्भीर बाल अपराधियों के व्यक्तित्व गुण अल्प बुद्धिमान बनाम अधिक बुद्धिमान में सार्थक अन्तर पाया गया। परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य बाल अपराधियों की तुलना में गम्भीर बाल अपराधी अधिक बुद्धिमान पाये गये।

iii. सामान्य बाल अपराधी तथा गम्भीर बाल अपराधियों के व्यक्तित्व गुण भावनाओं से प्रभावित होने वाला बनाम भावनात्मक रूप से स्थिर में सार्थक अन्तर पाया गया। परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य बाल अपराधियों की तुलना में गम्भीर बाल अपराधी अधिक भावनात्मक रूप से स्थिर पाये गये।

iv. सामान्य बाल अपराधियों तथा गम्भीर बाल अपराधियों के व्यक्तित्व गुण अप्रदर्शनात्मक बनाम उत्तेजनीय में सार्थक अन्तर पाया गया। परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य बाल अपराधियों की तुलना में गम्भीर बाल अपराधी अधिक उत्तेजनीय पाये गये।

v. सामान्य बाल अपराधियों तथा गम्भीर बाल अपराधियों के व्यक्तित्व गुण आज्ञाकारी बनाम् आग्रही में कोई अन्तर नहीं पाया गया।

vi. सामान्य बाल अपराधियों तथा गम्भीर बाल अपराधियों के व्यक्तित्व गुण गम्भीर बनाम उत्साही में सार्थक अन्तर पाया गया। परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य बाल अपराधियों की तुलना में गम्भीर बाल अपराधी अधिक उत्साही पाये गये।

vii. सामान्य बाल अपराधियों तथा गम्भीर बाल अपराधियों के व्यक्तित्व गुण नियमों का सम्मान न करना बनाम कर्तव्यनिष्ठ में सार्थक अन्तर पाया गया। परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य बाल अपराधियों की तुलना में गम्भीर बाल अपराधी अधिक कर्तव्यनिष्ठ पाये गये।

viii. सामान्य बाल अपराधियों तथा गम्भीर बाल अपराधियों के व्यक्तित्व गुण संकोची बनाम साहसी में सार्थक अन्तर पाया गया। परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य बाल अपराधियों की तुलना में गम्भीर बाल अपराधी अधिक साहसी पाये गये।

ix. सामान्य बाल अपराधियों तथा गम्भीर बाल अपराधियों के व्यक्तित्व गुण दृढ़ विचार बनाम कोमल विचार में सार्थक अन्तर पाया गया। परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य बाल अपराधियों की तुलना में गम्भीर बाल अपराधी अधिक कोमल विचार वाले पाये गये।

x. सामान्य बाल अपराधियों तथा गम्भीर बाल अपराधियों के व्यक्तित्व गुण जोशीला बनाम व्यक्तित्व के प्रति सावधान में सार्थक अन्तर पाया गया। परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य बाल अपराधियों की तुलना में गम्भीर बाल अपराधी व्यक्तित्व के प्रति अधिक सावधान पाये गये।

xi. सामान्य बाल अपराधियों तथा गम्भीर बाल अपराधियों के व्यक्तित्व गुण आत्मविश्वासी बनाम आशंकित में सार्थक अन्तर पाया गया। परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य बाल अपराधियों की तुलना में गम्भीर बाल अपराधी अधिक आशंकित पाये गये।

xii. सामान्य बाल अपराधियों तथा गम्भीर बाल अपराधियों के व्यक्तित्व गुण सामाजिक रूप से समूह पर निर्भर बनाम आत्मनिर्भर में सार्थक अन्तर पाया गया। परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य बाल अपराधियों की तुलना में गम्भीर बाल अपराधी अधिक आत्मनिर्भर पाये गये।

xiii. सामान्य बाल अपराधियों तथा गम्भीर बाल अपराधियों के व्यक्तित्व गुण अनियंत्रित बनाम नियंत्रित में सार्थक अन्तर पाया गया। परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य बाल अपराधियों की तुलना में गम्भीर बाल अपराधी अधिक नियंत्रित पाये गये।

xiv. सामान्य बाल अपराधियों तथा गम्भीर बाल अपराधियों के व्यक्तित्व गुण सहज बनाम व्यग्र में सार्थक अन्तर पाया गया। परिणाम से स्पष्ट है कि सामान्य बाल अपराधियों की तुलना में गम्भीर बाल अपराधी अधिक व्यग्र पाये गये।

शिक्षा प्रक्रिया में बालक एक महत्वपूर्ण कारक है। बालक के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास हेतु उसके जीवन लक्ष्यों के निर्धारण मार्ग में सुधारगृह के शिक्षकों तथा परिवारजन्यों द्वारा उनके वांछनीयं व्यवहार को प्रोत्साहित करना होगा जो उनके व्यक्तित्व का निर्माण करने में सहयोगी हों। बालक के जीवन में असफलता, असन्तोष, कुंठा आदि को परामर्शदाता के सहयोग से दूर करने का प्रयास किया जाये। बाल सुधारगृह में बालक अत्यन्त विषम परिस्थितियों से लाये जाते हैं एवं विषम परिस्थितियों को झेल भी रहे हैं वहाँ के कर्मचारियों को चाहिए कि वे बालकों के साथ सहयोगात्मक एवं सहानुभूतिपूर्ण ढंग से पेश आयें तथा बालकों की भावनाओं को समझने का प्रयास करें। इससे बालकों में भावनात्मक एवं उनके व्यक्तित्व का विकास होगा। बाल अपराधियों की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए और अधिक शोध किये जाने चाहिए ताकि बाल अपराधियों की समस्याओं का अधिक से अधिक निदान हो सके।

उपर्युक्त सुझावों के अतिरिक्त समाज में भी इन बाल अपराधियों के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण को जागृत करना आवश्यक है। विभिन्न प्रकार की सामाजिक संस्थाएँ समय-समय पर बाल सुधार गृहों में जाकर इन बालकों के साथ अन्त:क्रिया करके उनमें आत्मविश्वास का संचार कर सकती हैं तथा बालकों को यह अनुभव कराने में सफल हो सकती हैं कि वे इस समाज का एक अभिन्न अंग हैं। मनोवैज्ञानिक एवं परामर्शदाता के सहायोग से बाल अपराधियों के व्यक्तित्व विकास में एक महत्वपूर्ण कार्य किया जा सकता है जिससे बाल अपराधियों के व्यक्तित्व का चतुर्दिक विकास किया जा सके।

सन्दर्भ

पेसवर्क, आर.ए. (1971) 'एसोसियेटेड पर्सनालिटी डिफरेंसेज इन डेलिनक्वेंट्स एण्ड नॉन डेलिनक्वेंट्स', जर्नल ऑफ पर्सनालिटी एसेसमेण्ट, 35(2) पृ. 159-161

सिंह, एच.बी. (1982), 'ए स्टडी ऑफ एटिट्यूड एण्ड पर्सनालिटी एडजस्टमेण्ट ऑफ दि स्टूडेण्ट ऑफ क्रिमिनल ट्राइब्स', पी-एच.डी. थिसिस इन बुच, एम.बी. (प्रकाशित) फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी., पृ. 203

शर्मा, आर.पी. और गुन्थे आर.के. एवं सिंह, हेन, (1982), 'पर्सनालिटि कोरिलेट्स ऑफ जूवेनाइल डेलिनक्वेंसी', इण्डियन जर्नल ऑफ किलिनिकल साइकोलॉजी, 9(1) पृ. 43-45

कुमारी, एस. (1990), 'स्टडी ऑफ पर्सनालिटी कैरेक्टरिस्टिकस्, इन्टेलीजेन्स, एचीवमेण्ट मोटिवेशन, एडजस्टमेण्ट एण्ड सोशियो इकनॉमिक स्ट्रेट्स ऑफ जूवेनाइल एण्ड एडल्ट फिमेल आफेन्डर्स', इन बुच एम.बी. (प्रकाशित) फिफ्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी., पृ. 829

सिंह और उपाध्याय (2007), 'अपराधी और गैर अपराधी प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन', इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल साइन्स रिसर्चेस्, 3(1) पृ. 17-21

बूरचर्ज्ड, जी. और बूरचर्ज्ड एस. (1987), 'प्रिवेन्शन ऑफ डेलिनक्वेंट विहेवियर, नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशन

शर्मा, बी (1989), जूवेनाइल डेलिनक्वेंट्स् एण्ड देयर सोशल कल्चर, नई दिल्ली : उप्पल पब्लिकेशन

यू.एस. (1976) 'ऍक्सेप्शनल चिल्ड्रेन, नई दिल्ली : स्टारलिंग पब्लिसर

सेठ, हं. (1961), जूवेनाइल डेलिनक्वेंसी इन एन इण्डियन सेटिंग्स्, बाम्बे : पापुलर बुक डिपो।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 19, अंक 1, अप्रैल 2012

शिक्षा के संदर्भ में संपूर्ण क्रांति की अवधारणा

पंकज कुमार दूबे*

सारांश

सम्पूर्ण क्रान्ति 'लोकनायक' जयप्रकाश नारायण द्वारा परिकल्पित एक अवधारणा है जिसके अन्तर्गत उन्होंने जीवन के प्रत्येक पक्ष में बदलाव हेतु अहिंसक क्रान्ति की आवश्यकता को रेखांकित किया। सम्पूर्ण क्रान्ति के अन्तर्गत उन्होंने इसके सात अंगों का वर्णन किया, जिसमें से एक शैक्षिक क्रान्ति है। इस प्रकार शिक्षा के सन्दर्भ में जिस सम्पूर्ण क्रान्ति की अवधारणा उन्होंने प्रस्तुत किया, वह वर्तमान शिक्षा में बदलाव की एक कुंजी सिद्ध हो सकती है। उन्होंने वर्तमान शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन पर बल देते हुए अनुपयोगी एवं गलत ढंग से शिक्षित करने वाली शिक्षा व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन करने की अपील की। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आवश्यकता है उसी शैक्षिक क्रान्ति की जिसे उन्होंने सम्पूर्ण क्रान्ति के अन्तर्गत प्रस्तुत किया।

प्रत्येक समाज स्वयं की आवश्यकताओं एवं हितों के सन्दर्भ में कुछ विशेष मानदंड विकसित करता है। इन मानदंडों को जब तक इस समाज के सदस्य पालन करते रहते हैं, तब तक सामाजिक व्यवस्था सुचारु ढंग से चलती रहती है। परन्तु जब सदस्यों द्वारा इन मानदंडों की अवहेलना की जाती है, तब सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में आवश्यकता होती है एक क्रान्ति की, जो पुनः नये सिरे से सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करे, जिसमें सम्पूर्ण समाज की आवश्यकताओं एवं हितों का ध्यान रखा जाय।

भारतीय समाज ने भी स्वयं की आवश्यकताओं एवं हितों के सन्दर्भ में कुछ मानदंड विकसित किया, राष्ट्र निर्माण की एक दिशा निर्धारित की जिसे भारत के संविधान में लिपिबद्ध किया गया है एवं जो संक्षेप में संविधान की उद्देश्यिका में प्रतिबिम्बित होता है–

''हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की

* असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26–11–1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं। (बसु ,1998, पृ. 21)''

परन्तु वास्तविकता यह है कि वर्तमान व्यवस्था उपर्युक्त उद्देश्यिका की भावनाओं से काफी दूर हो चुकी है। जहां लगभग 50% मतदाता अपने मताधिकार का प्रयोग नहीं करते वहां कैसा लोकतंत्र हैं? इसका अर्थ यह है कि लगभग 50% भारतीय जनता यहां कि राजनैतिक व्यवस्था को पूरी तरह नकारती है। यहां की लोकतांत्रिक व्यवस्था लोगों की आकांक्षाओं एवं हितों को पूर्ण करने में असमर्थ रही है। यहां की राजनैतिक व्यवस्था भ्रष्टाचार एवं बाहुबल से पूरी तरह प्रभावित है। जो विकास का प्रारूप है उसका समाजवाद से कोई सम्बन्ध ही नहीं है, बल्कि ठीक इसके विपरीत यह पूंजीवादी व्यवस्था की तरफ अग्रसर है। लोगों पर व्यक्तिगत स्वार्थ, भ्रष्टाचार इत्यादि पूरी तरह हाबी है। शिक्षा व्यापार बन चुकी है, मानवीय मूल्यों का अभाव है एवं सत्य के मार्ग पर चलने का साहस नहीं। शिक्षित युवा बेरोजगारी से त्रस्त हैं। सम्पूर्ण व्यवस्था भ्रष्टाचार में डूब चुकी है। यह है भारतीय लोकतंत्र की वास्तविक तस्वीर। यह तस्वीर तभी बदल सकती है जब एक क्रान्ति हो। ऐसी ही क्रान्ति की एक रूपरेखा जयप्रकाश नारायण ने प्रस्तुत किया जिसे उन्होंने सम्पूर्ण क्रान्ति का नाम दिया। जयप्रकाश नारायण भारत के एक प्रसिद्ध समाजवादी चिन्तक थे जिन्होंने पूरी व्यवस्था में परिवर्तन करने हेतु 5 जून सन् 1974 को सम्पूर्ण क्रान्ति का उद्घोष किया तथा उस समय की वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध तथा लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा हेतु आन्दोलन का नेतृत्व किया जिसे जे पी आन्दोलन भी कहते हैं। उनके अनुसार यह सम्पूर्ण क्रान्ति सिर्फ सत्ता परिवर्तन से सम्भव नहीं है बल्कि एक वैचारिक क्रान्ति की आवश्यकता है जो प्रत्येक व्यक्ति के स्तर पर हो। जयप्रकाश नारायण ने स्पष्ट कहा था कि सत्ता परिवर्तन से सांपनाथ की जगह नागनाथ आते हैं। और अब इसे लोग अपनी आँखों से देख रहे हैं। अत: आज आवश्यकता है उनके बताये गये सम्पूर्ण क्रान्ति की जो जीवन के हर क्षेत्र में हो। तभी एक ऐसी व्यवस्था स्थापित हो सकती है जो सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करे तथा लोक कल्याण में सहायक हो, जिससे ऐसे समाज की स्थापना हो जिसका स्वप्न भारतीय मनीषीयों ने देखा था।

सम्पूर्ण क्रान्ति

सम्पूर्ण क्रान्ति का अर्थ है लोकशक्ति के जागरण, संगठन और संघर्ष व रचना की दोहरी

प्रक्रिया द्वारा समाज के हर क्षेत्र – वैचारिक, शैक्षणिक, नैतिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि में ऐसा बुनियादी परिवर्तन, जिससे हम स्वतंत्रता, समता और बंधुता के मानवीय, लोकतांत्रिक, और क्रांतिकारी मूल्यों पर आधारित विकेन्द्रित, लोकतांत्रिक समाज की दिशा में बढ़ सकें (रमेन्द्र, 2002, पृ. 72)।

सम्पूर्ण क्रान्ति की अवधारणा जयप्रकाश नारायण ने दी जिससे कि समाज से अन्याय, शोषण, भ्रष्टाचार से मुक्त नये भारत का निर्माण हो जो वास्तव में समाजवाद पर आधारित हो। इस प्रकार स्वतंत्रता, समता और मानवता के मूल्यों पर आधारित लोकतांत्रिक समाज की रचना हेतु शांतिमय संघर्ष द्वारा सामाजिक सम्बन्धों, संस्थाओं और प्रक्रियाओं के सभी आयामों में मौलिक परिवर्तन ही सम्पूर्ण क्रान्ति की अन्तर्वस्तु है (दस्तावेज, 1984, पृ. 62)।

जयप्रकाश नारायण ने इस 'सम्पूर्ण' शब्द का प्रयोग बहुत सोच समझ कर किया था। वे कहते थे कि पहले जितनी क्रान्तियाँ हुई हैं, वे मुख्य रूप से राजनीतिक क्रान्तियाँ थीं, राजव्यवस्था, अर्थव्यवस्था में परिवर्तन पर ही उनका ध्यान मुख्य रूप से केन्द्रित था, समाज–परिवर्तन या व्यक्ति–परिवर्तन पर नहीं। जयप्रकाश जी 'सम्पूर्ण मनुष्य' को बदलना चाहते थे, 'सम्पूर्ण समाज' को बदलना चाहते थे। उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में क्रान्ति का आह्वान किया। उन्होंने सम्पूर्ण क्रान्ति को स्पष्ट करते हुए कहा, ''सम्पूर्ण क्रान्ति कोई गद्दी छीनने की, सत्ता हथियाने की लड़ाई नहीं, बल्कि व्यवस्था–परिवर्तन, प्रक्रिया–परिवर्तन और नवनिर्माण की बात है। यह सम्पूर्ण क्रान्ति समस्त जनता की क्रान्ति है। उसका मोर्चा केवल राजधानियों में नहीं है, बल्कि हर गाँव और शहर में है, हर कार्यालय, विद्यालय और कारखाने में हैं, यहां तक कि हर परिवार में है। इन सब मोर्चों पर सम्पूर्ण क्रान्ति की लड़ाई हमें लड़नी है। जहां–जहां लोग समूह में रहते और काम करते हैं, तथा जहां लोगों के परस्पर सम्बन्ध आते हैं, ऐसी सब जगह लड़ाई का मोर्चा है और यह मोर्चा हर व्यक्ति के अन्दर भी है, क्योंकि अपने पुराने और गलत संस्कारों से हमें लड़ना है। यही हमारी सम्पूर्ण क्रान्ति है। हम नया समाज बनाना चाहते हैं, इसलिए हम सरकार और समाज, शिक्षा और चुनाव, बाजार और विकास की योजना, हर चीज में परिवर्तन चाहते हैं। बेकारी, महँगाई आदि समस्याओं का समाधान भी तब तक नहीं हो सकेगा जब तक आर्थिक विकास और योजनाओं की दिशा में क्रान्तिकारी परिवर्तन न हो। जब तक तिलक–दहेज, छुआछूत, ऊँच–नीच के भेदभाव दूर नहीं होते और जब तक हम अच्छी तरह समझ नहीं लेते कि खुदगर्जी के स्थान पर पारस्परिक मदद और सहयोग से ही हम सब ऊँचे उठ सकते हैं, तब

तक न सामाजिक न्याय हासिल हो सकेगा, न भ्रष्टाचार मिट सकेगा। शिक्षा में क्रान्ति के उद्देश्य भी तब तक पूरे नहीं हो सकेंगे। ये सब सवाल आज की व्यवस्था के साथ और एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इन सब में परिवर्तन लाये बिना सम्पूर्ण क्रान्ति कदापि होने वाली नहीं है। (नारायण, 1999, पृ. 6)''

इस तरह सम्पूर्ण क्रान्ति व्यक्ति व समाज के जीवन के हर क्षेत्र में की जाने वाली क्रान्ति है। जयप्रकाश नारायण ने इस सम्पूर्ण क्रान्ति के सात अंगों का उल्लेख किया जो निम्नलिखित है (नारायण, 2003, पृ. 110)–

(1) शैक्षिक क्रान्ति
(2) सामाजिक क्रान्ति
(3) आर्थिक क्रान्ति
(4) राजनीतिक क्रान्ति
(5) नैतिक-आध्यात्मिक क्रान्ति
(6) सांस्कृतिक क्रान्ति
(7) वैचारिक-बौद्धिक क्रान्ति

शिक्षा के सदर्भ में सम्पूर्ण क्रान्ति

सम्पूर्ण क्रान्ति व्यक्ति व समाज में परिवर्तन हेतु अहिंसक क्रान्ति है, यह प्रत्येक व्यक्ति व समाज में वैचारिक परिवर्तन की क्रान्ति है। यदि व्यक्ति व समाज को बदलना है तो इसमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका शिक्षा की ही होती है। इसलिए सम्पूर्ण क्रान्ति तभी सफल हो सकती है जब उसके अनुसार शिक्षा की रूपरेखा विकसित की जाय।

जयप्रकाश नारायण का यह मानना था कि वर्तमान शिक्षा पद्धति समाज की आवश्यकताओं एवं हितों को पूर्ण करने में अक्षम है इसलिए इस अनुपयोगी शिक्षा-पद्धति के विरुद्ध जेहाद बोलना होगा, शिक्षा में क्रान्ति करनी होगी। उन्होंने कहा कि, ''वर्तमान सड़ी हुई व्यर्थ की शिक्षा-पद्धति के विरुद्ध जेहाद बोलना होगा, क्योंकि यह शिक्षा व्यवस्था एक ओर तो हमारे अधिकांश बच्चों को अशिक्षित छोड़ देती है और दूसरी ओर वह बच्चों को गलत ढंग से शिक्षित करती है।'' आज भी यहां अंग्रेजों की बनायी हुई शिक्षा पद्धति ही चालू है, यत्र तत्र कुछ फर्क हुआ है। (नारायण, 1999, पृ. 31)''

इसलिए उन्होंने शैक्षिक क्रान्ति को सम्पूर्ण क्रान्ति के प्रमुख अंग के रूप में आवश्यक मानते हुए इसके अन्तर्गत शिक्षा में निम्नलिखित क्रान्तिकारी परिवर्तनों हेतु क्रान्ति का उद्घोष किया –

1. समाजवादी संस्कृति का निर्माण
2. जीवनोपयोगी शिक्षा
3. भारतीय दृष्टिकोण पर आधारित शिक्षा
4. ग्रामोन्मुखी शिक्षा
5. डिग्री विहीन शिक्षा
6. श्रममूलक शिक्षा
7. सभी को न्यूनतम शिक्षा

समाजवादी संस्कृति का निर्माण

चूंकि भारतीय संविधान में इस देश को एक समाजवादी गणराज्य के रूप में विकसित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था ठीक इसके विपरित दिशा में गतिमान है। जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति ऐसी शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन हेतु क्रान्ति है जिससे इस देश में एक समाजवादी संस्कृति का निर्माण हो। जयप्रकाश नारायण के अनुसार, शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे लोगों में समाजवादी विचारों का विकास हो, समाजवादी मनुष्य का निर्माण हो, और जिससे अन्ततः समाजवादी संस्कृति एवं सभ्यता का निर्माण हो।

उन्होंने कहा था कि ''समाजवाद सिर्फ समाज का वाह्य रूप बदलने से नहीं होता, बल्कि यह तो जीवन की पद्धति है, जीवन के मूल्यों के मिलने से आ सकता है। किंतु समाजवादी आंदोलन ने अब तक कानून बनाने का ही काम किया है, व्यक्ति को बनाने का नहीं .... राजतंत्र द्वारा वाह्य समाजवाद ही स्थापित किया जा सकता है, समाजवादी जीवन के मूल्य स्थापित नहीं किये जा सकते। उसका आर्थिक अथवा सामाजिक वाह्य ढांचा जरूर खड़ा हो जाता है किंतु समाजवादी संस्कृति का निर्माण नहीं होता! ..... समाजवाद का संबंध समाजवादी सभ्यता और समाजवादी मनुष्य से है।'' (नारायण, 2001, पृ. 65)''

अतः जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति शिक्षा में ऐसे परिवर्तन हेतु क्रान्ति है जिसके फलस्वरूप लोगों में समाजवादी विचारों का विकास हो, जिससे इस देश में समाजवादी संस्कृति का निर्माण हो सके।

जीवनोपयोगी एवं रोजगारोन्मुख शिक्षा

जयप्रकाश नारायण का कहना था कि शिक्षा जीवनोपयोगी तथा रोजगारोन्मुख होनी चाहिए। ऐसी शिक्षा का कोई अर्थ नहीं जिसका उपयोग व्यक्ति बेहतर जीवन हेतु न कर सकें। वर्तमान समाज की मूल समस्या जीवनोपयोगी शिक्षा का अभाव है जिससे लोग

बेकारी, बेरोजगारी के शिकार हैं। अत: शिक्षा का सम्पूर्ण स्वरुप बदलना होगा। ऐसी शिक्षा की रूपरेखा तैयार करनी होगी जो निरर्थक शिक्षा में समय बर्बाद न कर जीवनोपयोगी शिक्षा दे। इस सन्दर्भ में जयप्रकाश नारायण ने कहा कि शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। शिक्षा में क्रान्तिकारी बदलाव की आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता, अभिक्षमता, रुचि इत्यादि के आधार पर उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाय जिसका उपयोग वह अपने जीवन को बेहतर बनाने में कर सकें, आत्मनिर्भर बन सकें। जयप्रकाश नारायण ने कहा कि ''शिक्षा ऐसी हो, जो जीवनपयोगी हो। जिस शिक्षा को प्राप्त करके लोग अपने पैरों पर खड़े हो सके, कुछ कर सकें। वर्तमान शिक्षा से तो इतना ही होता है कि हम नौकरियां खोजते है और दर दर ठोकर खाते हैं। नौकरियां नहीं मिलती हैं तो कोई जीवन-यापन का रास्ता ही नहीं रहता। (नारायण, 1997, पृ. 100)''

उनका यह विश्वास था कि जो छात्र-अशान्ति है उसका कारण अपराधवृत्ति नहीं है बल्कि अनुपयुक्त और कुछ मामलों में सड़ी हुई शिक्षा-पद्धति तथा बेरोजगारी से उत्पन्न निराशा एवं सामाजिक आर्थिक विकास की गलत नीतियां हैं। (नारायण, 1997, पृ.42)

उनका कहना था कि रोजगार का अधिकार एक स्वस्थ्य लोकतंत्र के लिए उतना ही अनिवार्य है जितना वोट का अधिकार, इसलिए शिक्षा को रोजगारोन्मुखी बनाया जाय और साथ ही सभी शिक्षित युवकों के लिए रोजगार के अवसर पैदा किये जायं (नारायण, 1979, पृ.21)। उन्होने कहा था कि,''माध्यमिक स्तर से शिक्षा को रोजगार अभिमुखी बनाया जाय, जिसके साथ आर्थिक योजना की एक ऐसी प्रणाली हो जो रोजगार की गारंटी करे। शिक्षण सम्बन्धी नौकरियों को छोड़ कर अन्य नौकरियों के लिए विश्वविद्यालय की डिग्री आवश्यक न रहे।'' (नारायण, 1979, पृ. 61)

इस प्रकार जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति शिक्षा में ऐसे परिवर्तन हेतु क्रान्ति है जिसके फलस्वरूप सभी लोगों को जीवनोपयोगी शिक्षा मिल सके तथा सभी लोग आत्मनिर्भर बन सकें।

भारतीय दृष्टिकोण पर आधारित शिक्षा

जयप्रकाश नारायण ने कहा था कि हमारी शिक्षा-पद्धति भारतीय यथार्थ एवं भारतीय दृष्टिकोण से जुड़ी हुई नहीं रही है, स्वतंत्रता के पूर्व ही नहीं, उसके बाद भी वह हमारी स्थानीय आवश्यकताओं, वित्तीय वास्तविकताओं और पारंपरिक जीवन-मूल्यों से कटी रही (श्रीवास्तव, 2002, पृ. 65)

भारतीय शिक्षा-पद्धति का आधार आज भी वही है जो स्वतंत्रता पूर्व अंग्रेजों ने अपनी

आवश्यकताओं व अपने देश के हितों के अनुसार स्थापित किया, जिसका परिणाम यह रहा कि यह शिक्षा-पद्धति भारतीय समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में अक्षम रही तथा जो यहां के पारम्परिक मूल्य-अहिंसा, सत्य, और बन्धुत्व इत्यादि को लोगों में विकसित करने में भी निष्प्रभावी होती रही। जिस समाजवादी गणराज्य के रूप में भारत को विकसित करने का लक्ष्य रखा गया उसकी शिक्षा-पद्धति का तो समाजवाद से कोई सम्बन्ध ही नहीं रह गया। जयप्रकाश नारायण का विचार था कि शिक्षा-पद्धति को भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार विकसित किया जाय, जो भारतीय समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करे तथा पारम्परिक मूल्यों को विकसित करे। उन्होने कहा कि ''राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा के गुण एवं तत्व के विकास के लिए कारगर कदम उठाये जायँ, मौजूदा ढांचे में प्रत्येक स्तर पर सुधार किया जाय। (नारायण, 1997, पृ. 101)''

अत: सम्पूर्ण क्रान्ति उपर्युक्त सन्दर्भों में बहुत ही प्रासंगिक है और आज की यह माँग है कि शिक्षा-पद्धति में बदलाव हेतु क्रान्ति हो, जो भारतीय समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके तथा समाजवादी भारत का निर्माण हो। इस प्रकार जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति ऐसी शिक्षा व्यवस्था हेतु क्रान्ति है जिसमें शिक्षा भारतीय समाज की आवश्यकताओं, हितों एवं मूल्यों पर आधारित हो।

ग्रामोन्मुखी शिक्षा

जयप्रकाश नारायण का कहना था कि भारतीय शिक्षा ग्रामोन्मुखी होनी चाहिए, गाँव एवं शहर की शिक्षा समान नहीं होनी चाहिए क्योंकि ग्रामीण एवं शहरी समाज की आवश्यकताएँ भिन्न हैं। (शाह, 2002, पृ. 152)

इसलिए उनका कहना था कि एक शैक्षिक क्रान्ति होनी आवश्यक है जिसमें ग्रामीण स्कूल की व्यवस्था विकसित की जाय जो पारम्परिक एवं वर्तमान शिक्षा से भिन्न होगी तथा ग्रामीण पर्यावरण एवं आवश्यकताओं के अनुकूल होगी। इस भारत देश की ज्यादातर आबादी गाँवों में रहती है परन्तु वहां विकास की गति बहुत धीमी है तथा शिक्षा ऐसी है जो उन्हें गाँवों से पलायन के लिए विवश करती है। आवश्यकता है ऐसी शिक्षा की जो ग्रामीण समाज को वो सारे अवसर गाँव में ही प्रदान करे जिसकी तलाश में वह शहरों की तरफ पलायन करते है। ग्रामीण विद्यालय में इस प्रकार की शिक्षा होनी चाहिए जो गाँवों के विकास का आधार स्तम्भ बने। अर्थात व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास दोनों हो, जैसे इसके अन्तर्गत लघु उद्योग, ग्रामीण उद्योग, कृषि आदि की शिक्षा दी जानी चाहिए। यही सम्पूर्ण क्रान्ति का एक प्रमुख लक्ष्य है जिससे गाँवों का भी शहरों की तरह विकास हो, ग्रामीण समाज की भी आवश्यकताएँ गाँवों में ही पूर्ण हो सकें, वहां रहने

वाले लोगों की आकांक्षाओं को वहीं पर पूर्ण किया जा सके। इस प्रकार जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति शिक्षा को ग्रामोन्मुखी बनाने हेतु क्रान्ति है।

डिग्री विहिन शिक्षा

आजकल भारतीय शिक्षा व्यवस्था की सबसे बड़ी कमी यह है कि बहुत लोग कालेजों में सिर्फ डिग्री लेने हेतु जाते हैं जिसके आधार पर उन्हें कोई नौकरी मिल सके। इसका प्रतिफल यह हुआ कि चारों तरफ ऐसे निजी संस्थान खुल गये जहां गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अभाव है। इसके साथ ही शिक्षा एक व्यापार तथा भ्रष्टाचार की जननी बन गयी। शिक्षा संस्थाओं जो अच्छे मनुष्य के निर्माण का केन्द्र थीं, का तो अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया। इसीलिए जयप्रकाश नारायण का विचार था कि डिग्री आधारित शिक्षा व्यवस्था को ही समाप्त कर देना चाहिए। उन्होंने कहा कि ''शिक्षा में कोई मौलिक परिवर्तन तब तक सम्भव नहीं है, जब तक कि या तो (क) उपाधियां समाप्त न कर दी जायँ या (ख) उपाधियों का रोजगार से कोई सम्बन्ध न रहे।'' (नारायण, 1999, पृ.32)

उनका सोचना था कि जब तक डिग्रियों और नौकरियों का सम्बन्ध तोड़ा नहीं जायेगा, तब तक डिग्री का यह झूठा मोह दूर नहीं होगा। इन व्यवस्थाओं में परिवर्तन करने हेतु उन्होंने कहा कि, ''मेरा सुझाव यह है कि नौकरियाँ देने वाले चाहे सरकारी क्षेत्र हो या निजी, जिस प्रकार का काम हो उसके अनुरुप स्वयं अपनी ओर से परीक्षाएं ले सकते हैं। भरती के बाद आवश्यकता हो तो वे अतिरिक्त शिक्षण और प्रशिक्षण की व्यवस्था कर सकते हैं। युनिवर्सिटी की ओर से मात्र एक प्रमाणपत्र दिया जाय कि विद्यार्थी कितने वर्ष महाविद्यालय में रहा, कितने घण्टे कक्षाओं में रहा और दुकानों, कारखानों, दफ्तरों और खेती आदि में कितना काम किया और किन विषयों में उसकी रुचि है। उसकी योग्यता और कार्यकुशलता को परखना उसे रोजगार देने वाले का काम होगा। योग्यता केवल डिग्री से न आँकी जायँ। क्योंकि डिग्री प्राप्त कर लेना योग्यता का प्रमाण पत्र नहीं हो सकता।'' (नारायण, 1999, पृ. 32)

अत: जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रान्ति के द्वारा डिग्री एवं नौकरी के बीच सम्बन्ध समाप्त कर योग्यता को आधार बनाने पर बल दिया।

श्रममूलक शिक्षा

भारतीय समाज पहले से ही वर्ग आधारित रहा है। इस वर्ग व्यवस्था को समाप्त करने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। परन्तु वर्तमान शिक्षा-पद्धति के कारण समाज में एक नये वर्ग विभाजन की समस्या ने जन्म लिया - श्रम आधारित वर्ग। एक वर्ग जो मुख्यत:

शारीरिक श्रम करता है और दूसरा जो मुख्यत: बौद्धिक कार्य करता है। वर्तमान शिक्षा-पद्धति बौद्धिक कार्य करने वालों में श्रम के प्रति श्रद्धा का अभाव पैदा कर रही है। जिसके कारण लोग शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त शारीरिक श्रम करना पसन्द नहीं करते तथा शारीरिक श्रम के प्रति और शारीरिक श्रम करने वालों के प्रति हेय दृष्टि रखने लगते हैं। जिसके कारण बेकारी एवं अशान्ति की समस्या पैदा हो गयी। इसके कारण शोषण की समस्या भी पैदा हो गयी। भविष्य में श्रम आधारित वर्गों के मध्य संघर्ष की समस्या का सामना भी करना पड़ सकता है। जयप्रकाश नारायण किसी भी प्रकार की वर्ग व्यवस्था के विरुद्ध थे तथा एक वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहते थे इसलिए वह वर्तमान शिक्षा में परिवर्तन कर उसे श्रममूलक बनाना चाहते थे जिससे लोगों में श्रम के प्रति एवं श्रम करने वालों के प्रति श्रद्धा हो, सम्मान हो तथा लोग पूर्णरूपेण आत्मनिर्भर बन सकें। (शरण, 2010)

वर्तमान शिक्षा-पद्धति या तो वर्ग संघर्ष की स्थिति पैदा कर रही है या फिर नया वर्ग पैदा कर रही है परन्तु वर्गहीन समाज की स्थापना में अक्षम है। जयप्रकाश नारायण का विचार था कि यदि शिक्षा को श्रम मूलक बनाया जाय तो सभी के अन्दर श्रम के प्रति श्रद्धा होगी, सम्मान होगा। अत: जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति शिक्षा-पद्धति में ऐसे बदलाव हेतु क्रान्ति है जिससे शिक्षा श्रममूलक हो जिसके फलस्वरूप लोगों में वैचारिक परिवर्तन हो, लोगों में श्रम के प्रति श्रद्धा भाव उत्पन्न हो तथा वर्गहीन समाज की स्थापना हो सके।

सभी को न्यूनतम श्रममूलक और कौशल शिक्षा

शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति हेतु आवश्यक है और यह निश्चित करना कि कोई अशिक्षित न रह जाय यह पूरे समाज का उत्तरदायित्व है क्योंकि शिक्षा ही समाज के सदस्य का निर्माण करती है जिसका प्रभाव पूरे समाज पर पड़ता है। एक सभ्य समाज की स्थापना के लिए आवश्यक है कि समाज में सभी को गुणवत्तापूर्ण न्यूनतम शिक्षा अवश्य मिले। जयप्रकाश नारायण सभी के लिए श्रममूलक न्यूनतम शिक्षा के पक्षधर थे। उनका कहना था कि ''शिक्षा प्रणाली को इस तरह गठित किया जाय कि उसका सीधा सम्बन्ध देश की समस्याओं से जुड़ सके। यह व्यवस्था भी हो कि न्यूनतम शिक्षा सबको मिल सके और अज्ञान तथा निरक्षरता का समूल नाश किया जा सके।.... शिक्षा में क्रान्ति का पहला चरम यही हो सकता है कि शिक्षा श्रममूलक हो और न्यूनतम शिक्षा सबको प्राप्त हो।'' (नारायण, 1999, पृ. 33)

अत: जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति सभी को श्रममूलक गुणवत्तापूर्ण न्यूनतम शिक्षा अनिवार्य करने हेतु क्रांति है, जिसे वर्तमान में सभी हेतु प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य

कर एक कदम उठाया गया है। परन्तु जयप्रकाश नारायण ने जिस स्तर की न्यूनतम शिक्षा हेतु क्रान्ति की परिकल्पना प्रस्तुत की, उसमें अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है।

निष्कर्ष

इस प्रकार जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रान्ति में जिस शैक्षिक क्रान्ति की रूपरेखा प्रस्तुत की, वह वर्तमान सन्दर्भ में भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी उस समय था। उनकी शैक्षिक क्रान्ति के कुछ विचारों को अपनाते हुए शिक्षा में कुछ परिवर्तन किया गया परन्तु अभी वह पर्याप्त नहीं है। उन्होंने शिक्षा को जीवनोपयोगी, ग्रामोन्मुखी एवं श्रममूलक बनाने हेतु सम्पूर्ण क्रान्ति का बिगुल फूंका। आवश्यकता है कि शिक्षा के सन्दर्भ में जिस सम्पूर्ण क्रान्ति का उन्होंने उद्घोष किया उस पर अमल करते हुए शिक्षा को जीवनोपयोगी, ग्रामोन्मुखी एवं श्रममूलक बनाया जाय।

संदर्भ

श्रीवास्तव, शैलेन्द्र (2002): लोकनायक की सम्पूर्ण क्रान्ति परिकल्पना, *सर्वोदय से सम्पूर्ण क्रान्ति जयप्रकाश जन्मशती स्मरण* में प्रकाशित, सर्वोदय समाज सम्मेलन, पटना।

दस्तावेज (1984): *सम्पूर्ण क्रान्ति की अवधारणा,* छात्र युवा संघर्ष वाहिनी की राष्ट्रीय समिति का दस्तावेज, जून, 1984।

नारायण, जयप्रकाश (1976): *बिहारवासियों के नाम चिट्ठी,* संघर्ष कार्यालय, पटना।

नारायण, जयप्रकाश (1979): जे.पी. ने प्रधानमंत्री को लिखा, *दिनमान,* 8–14 अप्रैल।

नारायण, जयप्रकाश (1997): *मेरी विचार यात्रा, भाग–2* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी।

नारायण, जयप्रकाश (1998): *फ्राम सोशलिज्म टू सर्वोदय,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी।

नारायण जयप्रकाश (1999): *सम्पूर्ण क्रान्ति,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी।

नारायण, जयप्रकाश (2001): *मेरी विचार यात्रा, भाग–1,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी।

नारायण, जयप्रकाश (2002): *सामुदायिक समाज रूप और चिन्तन,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी।

नारायण, जयप्रकाश (2003): *कारावास की कहानी,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी ।

बसु, दुर्गादास (1998): *भारत का संविधान–एक परिचय,* प्रेंटिस हाल ऑफ इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली ।

रमेन्द्र (2002): *सम्पूर्ण क्रान्ति और बुद्धिवाद, सर्वोदय से सम्पूर्ण क्रान्ति– जयप्रकाश जन्मशती स्मरण* में प्रकाशित, सर्वोदय समाज सम्मेलन, पटना।

शरण, त्रिपुरारी (2008): *जयप्रकाश नारायण के शिक्षा चिंतन के संदर्भ में पंकज कुमार दूबे द्वारा त्रिपुरारी शरण का लिया गया साक्षात्कार* (अप्रकाशित). पटना, 28 जून, 2008।

शाह, कान्ति (2002): *जयप्रकाश की जीवन–यात्रा,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 19, अंक 1, अप्रैल 2012

पूर्व माध्यमिक स्तर के छात्रों के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन
मॉरीशस एवं भारत के संदर्भ में

राकेश राय* और **अनीता राय****

सारांश

शोधकर्ता प्रस्तुत शोध में पूर्व माध्यमिक स्तर के छात्रों के बीच नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन भारतीय एवं मॉरीशस के संदर्भ में किया है। शोध अध्ययन हेतु 180 न्यायदर्श का चयन किया है जिसमें भारत तथा मॉरीशस के छात्रों की संख्या 90-90 शोध अध्ययन न्यायदर्श के रूप में चयनित हैं। प्रदत्त आँकड़ों के विश्लेषण हेतु अरुण कुमार सिंह एवं अलपना सेन गुप्ता द्वारा निर्मित 'नैतिक मूल्य मापनी' मापन उपकरण का प्रयोग अध्ययन में किया गया है। शोध परिणाम यह इंगित करता है कि छात्रों की दृष्टि से भारत के छात्रों का नैतिक मूल्य, मॉरीशस के छात्रों से उच्च पाया गया है। दूसरी तरफ, मॉरीशस के बालक और बालिका में अन्तर नहीं पाया गया, जबकि भारत के बालक एवं बालिकाओं के बीच अन्तर पाया गया जिसमें बालिकाओं का नैतिक मूल्य उच्च पाया गया। भारत एवं मॉरीशस के बालकों के बीच नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया गया, जिसमें मॉरीशस के बालकों को वरीयता दी गयी जबकि भारत एवं मॉरीशस के बालिकाओं के बीच में नैतिक मूल्य में समानता पायी गयी। अत: भारत के बालकों के नैतिक मूल्य का विकास करना चाहिए।

भारतीय समाज आज एक संक्रमण के दौरे से गुजर रहा है। परिवर्तन की इस तीव्र आँधी ने जहाँ जीवन के बहुतेरे मानवीय मूल्यों, आस्थाओं एवं प्रतीकों पर प्रहार किया है एवं उनका माखौल उड़ाया है, वहीं एक पूरी पीढ़ी को परम्परा एवं आधुनिकता, जड़ता एवं गतिमयता के द्वन्द्व में भटकने को छोड़ दिया है, जिसमें पुरानी मान्यताएँ सामने आ रही हैं। इन सभी मान्यताओं में भौतिक मूल्यों एवं अर्थ की प्रधानता है। भौतिक जगत तो मात्र

* (वरिष्ठ प्रवक्ता), शिक्षा विभाग, एस.आर.एम. विश्वविद्यालय, मोदीनगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)
* (प्रवक्ता), शिक्षा विभाग, एस.आर.एम. विश्वविद्यालय, मोदीनगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)

कागज के फूल के समान है जिसमें सुगन्ध नहीं होती। इसलिए ऐसे मार्ग को खोजना आवश्यक है जिस पर चलकर मनुष्य वास्तविक शान्ति प्राप्त कर सके, ऐसी परिस्थिति में शिक्षा ही वह साधन है जो समाज में शान्ति की स्थापना कर सकता है।

मानव का सबसे उच्च उद्देश्य मानव मूल्य एवं नैतिकता को माना गया है। नैतिकता से चरित्र का निर्माण होता है, चरित्र मानव व्यक्ति की मूल्यवान धरोहर है। नैतिक मूल्य ही बालक के जीवन को शुरू से अन्त तक प्रभावित करते हैं।

वर्तमान समय के वातावरण में अनुशासन का तांडव सर्वत्र हो रहा है। इसे रोकने के लिए आवश्यक है कि नैतिक व चारित्रिक शिक्षा द्वारा बालकों को अनुशासन में रहने की शिक्षा प्रदान की जाए।

नैतिक मूल्यों के विकास के लिए घर एवं विद्यालय दोनों की भूमिका होती है। परन्तु छात्र जो देश के भविष्य हैं उनके अन्तर्गत नैतिक मूल्य का विकास करना आवश्यक होगा, इसलिए छात्रों का नैतिक मूल्यों के प्रति कैसा दृष्टिकोण है और किस प्रकार से विद्यार्थियों को नैतिक मूल्यों को आत्मसात करने की प्रेरणा दी जाये। इन्हीं तथ्यों का अध्ययन करने हेतु कुछ साहित्य का अध्ययन किया जो शिक्षक, छात्र, माता-पिता से सम्बन्धित शोध किया गया था। यह साहित्य हैं गुडवार तथा स्केट्स (1952) खेर (1988), वी.पी. वर्मा (1993), मिश्रा 2003, मोहनी 2004, डॉ. अनिल कुमार 2008 आदि। इन साहित्य के परिणामों के अध्ययन के बाद शोधकर्ता ने महसूस किया कि नैतिक मूल्य पर शोध हुआ है परन्तु दो देशों के छात्रों के बीच तुलनात्मक अध्ययन का अभाव है।

इसलिए इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता ने अपने अध्ययन की समस्या ''पूर्व माध्यमिक स्तर के छात्रों के बीच नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन : भारत एवं मॉरीशस के संदर्भ में'' का चयन किया है।

समस्या कथन

प्रस्तुत अध्ययन की समस्या ''पूर्व माध्यमिक स्तर के छात्रों के बीच नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन : भारत एवं मॉरीशस के संदर्भ में'' है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. भारत एवं मॉरीशस के छात्रों के बीच नैतिक मूल्यों का अध्ययन करना।
2. भारत के बालकों एवं बालिकाओं के बीच नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. मॉरीशस के बालकों एवं बालिकाओं के नैतिक मूल्यों का जानकारी ज्ञात करना।

4. भारत एवं मॉरीशस के बालकों के बीच में नैतिक मूल्यों की तुलना करना।
5. भारत एवं मॉरीशस के बालिकाओं के बीच नैतिक मूल्येां का अध्ययन करना।
6. भारत के बालकों और मॉरीशस के बालिकाओं के बीच नैतिक मूल्यों का अध्ययन करना।
7. भारत की बालिकाओं एवं मॉरीशस के बालकों के बीच नैतिक मूल्यों की तुलनात्मक ज्ञान प्राप्त करना।

अध्ययन की परिकल्पना

1. भारत एवं मॉरीशस के छात्रों के बीच नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है।
2. भारत के बालकों एवं बालिकाओं के बीच नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है।
3. मॉरीशस के बालकों एवं बालिकाओं के बीच नैतिक मूल्यों के बीच सार्थक अन्तर नहीं है।
4. भारत के बालकों के नैतिक मूल्यों के बीच सार्थक अन्तर नहीं है।
5. भारत एवं मॉरीशस के बालिकाओं के बीच नैतिक मूल्य में सार्थक अन्तर नहीं है।
6. भारत के बालकों और मॉरीशस के बालिकाओं के बीच नैतिक मूल्यों के बीच सार्थक अन्तर नही है।
7. भारत के बालिकाओं और मॉरीशस के बालकों के नैतिक मूल्यों के बीच सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन की सीमाएं

प्रस्तुत शोध का सीमांकन न्यायदर्श आदि को ध्यान में रखकर सीमांकन किया गया है।

1. प्रस्तुत अध्ययन भारत के जिला के केवल गाजियाबाद के दो विद्यालयों को लिया गया है।
2. मॉरीशस के दो विद्यालयों को न्यायदर्श के रूप में चयनित किया गया।
3. अध्यापक में केवल पूर्व माध्यमिक स्तर को लिया गया।
4. प्रस्तुत अध्ययन को केवल नैतिक मूल्य तक सीमित किया गया।
5. केवल अल्पना सैन गुप्ता तथा अरूण कुमार सिंह के द्वारा प्रतिपादित नैतिक मूल्य मापनी का प्रयोग किया गया।

प्रत्ययों की व्याख्या

1. पूर्व माध्यमिक स्तर – 6 से 8 तक के बच्चे के स्तर को पूर्व माध्यमिक स्तर कहते हैं, यह माध्यमिक स्तर एवं प्राथमिक स्तर के बीच का स्तर है।
2. नैतिक मूल्य – भारतीय दार्शनिकों के अनुसार सत्यम् शिवम् सुन्दरम् हमारे नैतिक मूल्य हैं जो त्रिकाल शाश्वत हैं। न्याय, आत्मनियंत्रण, शक्ति, सहभागिता, सहयोग, वफादारी, इमानदारी, पवित्रता आदि मूल्य ही नैतिक मूल्य कहे जाते हैं।

शोध अभिकल्प

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान में प्रयोग की जाने वाली सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। इस विधि का चयन भारत एवं मॉरीशस के छात्रों की परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए किया गया है।

जनसंख्या एवं न्यायदर्श

भारत एवं मॉरीशस के एक-एक जिले के दो-दो स्कूल के छात्रों का चयन किया गया है, जिसमें यादृच्छिक चयन विधि से प्रयाज्यों के रूप में 90 छात्र भारत से एवं 90 छात्र मॉरीशस से न्यायदर्श के रूप में चयनित किये गये हैं।

उपकरण का प्रयोग

शोधकर्ता ने अपने अध्ययन में नैतिक मूल्यों के मापन हेतु अल्पना सेन गुप्ता एवं डा. अरुण कुमार सिंह द्वारा निर्मित मापन 'नैतिक मूल्य मापनी', (Moral, Value Scale) का उपकरण के रूप में चयन किया है।

प्रयुक्त सांख्यिकी विधि का प्रयोग

प्रस्तुत शोध प्रपत्र में शोधकर्ता प्रदत्तों का विश्लेषण करने हेतु, मध्यमान, प्रामाणिक विचलन तथा क्रान्तिक अनुपात आदि सांख्यिकीय प्रविधि का प्रयोग किया है।

विश्लेषण एवं व्याख्या

तालिका-1

भारत एवं मॉरीशस के छात्रों के बीच नैतिक मूल्यों का प्रप्तांकों की तुलना

देश	संख्या	मध्यमान	प्रामाणिक विचलन	क्रान्तिक अनुपात
भारत	90	27.70	3.80	3.57**
मॉरीशस	90	25.67	4.10	

** सार्थक अन्तर है।

तालिका–1 पर दृष्टिपात करने पर यह इंगित होता है कि नैतिक मूल्यों के दृष्टि से भारत के छात्रों का स्तर ऊँचा है मॉरीशस के छात्रों की तुलना में, क्योंकि क्रान्तिक अनुपात का मान 3.57 है जो .01 विश्वास स्तर सार्थक है। अत: परिकल्पना नं.–1 ''भारत एवं मॉरीशस के छात्रों के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं हैं'' अस्वीकृत होती है। इसमें नैतिक मूल्यों की वरीयता भारतीय छात्रों के प्रति परिलक्षित होती है, अत: मॉरीशस के छात्रों में नैतिक मूल्यों का विकास अपेक्षित है।

तालिका–2

भारत के बालकों एवं बालिकाओं के बीच नैतिक मूल्यों के प्रप्तांकों की तुलना

देश (भारत)	संख्या	मध्यमान	प्रामाणिक विचलन	क्रान्तिक अनुपात
बालक	40	24.07	4.27	5.27**
बालिका	50	30.86	7.04	

**सार्थक अन्तर है।

तालिका–2 का अवलोकन के आधार परिणाम ज्ञात है कि भारत के बालकों की अपेक्षा बालिकाओं का नैतिक मूल्य उच्च पाया गया। क्रान्तिक अनुपात का 5.24 है जो .01 विश्वास स्तर पर सार्थक है अर्थात इस सारणी में परिकल्पना नं. 2 'भारत के बालकों एवं बालिकाओं के नैतिक मूल्य में सार्थक अन्तर नहीं है, अस्वीकृत पायी गयी। परिणाम भारत के बालिकाओं के पक्ष में है।

तालिका–3

मॉरीशस के बालकों एवं बालिकाओं के बीच नैतिक मूल्यों के प्रप्तांकों की तुलना

देश मॉरीशस	संख्या	मध्यमान	प्रामाणिक विचलन	क्रान्तिक अनुपात
बालक	35	27.26	7.80	1.62**
बालिका	55	25.20	4.40	

**सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका–3 को देखने से स्पष्ट होता है कि मॉरीशस देश के बालकों एवं बालिकाओं के नैतिक मूल्य समान हैं क्योंकि क्रान्तिक अनुपात का मान 1.62 है जो .01 के विश्वास स्तर पर सार्थक नहीं है। अत: नैतिक मान्यताओं के आधार पर मॉरीशस के बालकों एवं

बालिकाएं समान दृष्टिकोण रखते हैं। इसलिए परिकल्पना नं.-3 ''मॉरीशस के बालकों और बालिकाओं के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं हैं'' स्वीकृत होती है।

तालिका-4

भारत एवं मॉरीशस के बालकों के बीच नैतिक मूल्यों के प्राप्तांकों की तुलना

देश	समूह	मध्यमान	प्रामाणिक विचलन	क्रान्तिक अनुपात
भारत	40	25.7	3.75	2.32**
मारीशस	35	27.4	2.32	

**सार्थक अन्तर है।

तालिका-4 में क्रान्तिक अनुपात का मान 2.34 है जो इंगित करती है कि परिकल्पना नं. 4 ''भारत एवं मॉरीशस के बालकों के बीच नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है'', अस्वीकृत होती है क्योंकि .01 विश्वास स्तर पर सार्थक है। मॉरीशस के बालकों का नैतिक स्तर भारत के बालकों की तुलना में उच्च है, इसलिए भारत में भी बालकों के नैतिक शिक्षा पर बल देना चाहिए।

तालिका-5

भारत एवं मॉरीशस की बालिकाओं के बीच नैतिक मूल्यों के प्राप्तांकों की तुलना

देश	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रामाणिक विचलन	क्रान्तिक अनुपात
भारत	बालिका	50	27.9	5.57	1.98*
मॉरीशस	बालिका	55	30.18	6.31	

*सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-5 का परीक्षण करने के बाद परिणाम यह है कि भारत एवं मॉरीशस की बालिकाओं आपस में नैतिक दृष्टिकोण से समान विचार रखती है क्योंकि क्रान्तिक अनुपात 1.98 है जो .01 विश्वास स्तर पर सार्थक नहीं हैं।, अत: परिकल्पना नं.-5 ''भारत एवं मॉरीशस की बालिकाओं के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है'' स्वीकृत होती है। अर्थात नैतिक मूल्य के दृष्टिकोण से भारत एवं मॉरीशस की बालिकाएँ समान मूल्य रखती हैं।

तालिका-6
भारत के बालकों एवं मॉरीशस की बालिकाओं के बीच नैतिक मूल्यों के प्राप्तांकों की तुलना

देश	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रामाणिक विचलन	क्रान्तिक अनुपात
भारत	बालक	40	26.2	4.20	2.63**
मॉरीशस	बालिका	55	28.2	2.79	

**सार्थक अन्तर है।

तालिका-6 से दृष्टिगत होता है मॉरीशस के बालिकाओं की नैतिक मूल्य भारत के बालकों से उच्च है क्योंकि परिकल्पना सं. 6 ''भारत के बालकों तथा मॉरीशस की बालिकाओं के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है'' अस्वीकृत होती है। इसके क्रान्तिक अनुपात का मान 2.63 है जो कि .01 विश्वास स्तर पर सार्थक है। अर्थात मॉरीशस की छात्राओं का नैतिक पक्ष भारत के बालकों से उच्च पाया गया है। अत: भारत के बालकों के अन्तर्गत नैतिक मूल्य का विकास करना चाहिए।

तालिका-7
भारत की बालिकओं एवं मॉरीशस के बालकों के बीच नैतिक मूल्यों के प्राप्तांकों की तुलना

देश	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रामाणिक विचलन	क्रान्तिक अनुपात
भारत	बालिका	50	32.28	4.39	3.95**
मॉरीशस	बालक	35	28.68	4.04	

**सार्थक अन्तर है।

तालिका-7 का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि भारत की बालिकाओं और मॉरीशस के बालकों के बीच नैतिक मूल्यों में अन्तर है क्योंकि इसके क्रान्तिक अनुपात का मान 3. 95 है जो .01 विश्वास स्तर पर सार्थक है। अत: परिकल्पना नं.-7 ''भारत की बालिकाओं एवं मॉरीशस के बालकों के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है'' अस्वीकृत होती है। अर्थात मॉरीशस के बालक की अपेक्षा भारत की बालिकाओं का नैतिक स्तर उच्च है क्योंकि भारत की बालिकाओं पर माँ का प्रबल प्रभाव होता है।

निष्कर्ष

शोध प्रपत्र का निष्कर्ष निम्न है :

1. भारत के छात्रों में, मॉरीशस की छात्राओं की अपेक्षा नैतिक मूल्य उच्च पाया गया है।
2. भारत की बालिकाओं में नैतिक मूल्य का स्तर बालकों से उच्च पाया गया है।
3. मॉरीशस की बालकों एवं बालिकाओं में नैतिक मूल्य समान पाया गया है।
4. भारत के बालकों की अपेक्षा, मॉरीशस के बालकों का नैतिक मूल्य उच्च है।
5. भारत एवं मॉरीशस के बालिकाओं में नैतिक मूल्य समान पाया गया है।
6. भारत के बालक, मॉरीशस की बालिकाओं से निम्न नैतिक मूल्य रखते हैं।
7. भारत की बालिकाओं का नैतिक स्तर मॉरीशस के बालकों से उच्च है।

सुझाव

इसका अध्ययन करने के बाद निम्न सुझाव आते हैं :

1. मॉरीशस के छात्रों के पाठ्यक्रम में नैतिक विषय को पढ़ाने की आवश्यकता है।
2. भारत के बालकों को नैतिक कहानियाँ सुनाने की आवश्यकता है।
3. मॉरीशस के छात्रों को नैतिकता विकसित करनी चाहिए।
4. अध्ययन क्षेत्र में नैतिक मूल्यों के अतिरिक्त अन्य मूल्यों को भी बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
5. छात्रो को नैतिकता का ज्ञान आवश्यक है। इसलिए नैतिक प्रतिमान का निर्माण कर विद्यालय स्तर पर शिक्षक को शिक्षण कार्य करना चाहिए।

शैक्षिक उपयोगिता

प्रस्तुत अध्ययन का परिणाम व्यक्तिगत के साथ सामाजिक रूप से प्रासंगिक है, इसकी निम्न उपयोगिताएं हैं :

1. छात्रों में मानवीय मूल्यों का विकास करने में सहायक है।
2. सांस्कृतिक एवं चारित्रिक पाठ पढ़ाने में सहायक है।
3. जीवन को जीने के तरीके से अवगत कराने में सहायक है।
4. जीवन मूल्यों एवं मानवीय संबंधों का विकास करने में सहायक है।
5. छात्र एवं शिक्षक के सम्बन्ध को सुधारने में सहायक है।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 19, अंक 1, अप्रैल 2012

शोध टिप्पणी/संवाद

लोकतंत्र एवं शिक्षा का अधिकार

नीलिमा सिंह*

लोकतंत्र जीवन-यापन की एक ऐसी शैली है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करती है। लोकतंत्र समान अधिकार तथा समान स्वतंत्रता के सिद्धान्तों पर आधारित है। ये सिद्धान्त किसी जाति अथवा व्यक्ति विशेष के लिए न होकर वरन् सभी के लिए होते हैं। लोकतंत्र केवल एक शासकीय व्यवस्था ही नहीं है, यह एक प्रगतिशील विचारधारा है जो केवल शासन के रूप तक सीमित नहीं बल्कि सामाजिक क्षेत्र को भी अनेक अर्थों में प्रभावित करती है। सामाजिक व्यवस्था के रूप में लोकतंत्र ऐसा विचार है जो स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व की भावनाओं के आधार पर समाज को गठित करता है। देश में लोकतंत्र की सफलता के लिए लोगों में राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना एवं समय के साथ उत्तरदायित्व की भावना का होना जरूरी है। इसके विपरीत अवस्था में लोकतंत्र के विफल होने की सम्भावना अधिक होती है। अत: नागरिकों में राजनीतिक चेतना भरना और उन्हें अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक करना आवश्यक है। यह कार्य शिक्षा द्वारा ही पूर्ण हो सकता है। यदि हम शिक्षा प्रणाली में आवश्यक सुधार करें और उसके द्वारा नागरिकों में लोकतांत्रिक भावना का विकास कर दें तो नि:सन्देह हमारा लोकतंत्र सफल एवं सबल हो सकेगा।

'डेमोक्रेसी' (Democracy) अथवा जनतंत्र का अर्थ है-जनता के हाथ में शक्ति। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के शब्दों में, लोकतंत्र का अर्थ 'जनता का शासन, जनता द्वारा, जनता के लिए है'। (Democracy is the government of the people by the people and for the people.) बोडे के अनुसार, 'लोकतंत्र जीवन-यापन की एक रीति है। जीवन-यापन की रीति से तात्पर्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित

* असिस्टेंट प्रोफेसर, उदय प्रताप कालेज, वाराणसी

करना है; चाहे वह राजनीतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक क्षेत्र हो, राधाकृष्णन विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग में इसी विचारधारा का समर्थन मिलता है। रिपोर्ट में लोकतंत्र के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है–'लोकतंत्र जीवन–यापन का एक ढ़ंग है न कि केवल एक राजनीतिक व्यवस्था। वह उन अधिकारों तथा स्वतंत्रता के सिद्धान्तों पर आधारित रहता है जो किसी अमुक जाति, धर्म, लिंग तथा आर्थिक स्थिति के भेद–भावों से ऊपर उठकर सबके ऊपर समान रूप से लागू होता हो।' प्रजातंत्र केवल एक शासकीय व्यवस्था नहीं है। प्रजातंत्र एक प्रगतिशील विचारधारा है जो केवल शासन के रूप तक सीमित नहीं होती। यह सामाजिक क्षेत्र में भी आ जाती है। सामाजिक व्यवस्था के रूप में लोकतंत्र ऐसा विचार है जो स्वतंत्रता, समानता, न्याय एवं बंधुत्व की भावनाओं के आधार पर समाज को गठित करना चाहता है।

15 अगस्त, सन् 1947 ई. को अंग्रेजों के नियत्रंण से मुक्त होकर भारत ने लोकतंत्र के सिद्धान्तों से प्रेरित होते हुए स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व तथा न्याय के आधार पर लोकतंत्रीय सरकार का गठन किया। 26, नवम्बर, सन् 1949 ई. को भारतीय संविधान बनकर तैयार हुआ। इस संविधान को 26 जनवरी, सन् 1950 ई. को लागू करके यह घोषित कर दिया गया कि भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य है जो सम्पूर्ण भारतीय जनता के लिए विचार अभिव्यक्ति, विश्वास तथा धर्म एवं उपासना की स्वतंत्रता, अवसर की समानता तथा सभी नागरिकों में बंधुत्व की भावना को विकसित करके राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक न्याय की व्यवस्था करेगा। चूँकि इन चारों आदर्शों को प्राप्त करने के लिए शिक्षा को परम् आवश्यक समझा गया, इसलिए संविधान में धारा–45 के अनुसार यह घोषणा कर दी गई कि देश के सभी राज्य संविधान के लागू होने की तिथि से दस वर्ष के अन्दर चौदह वर्ष तक के प्रत्येक बालक के लिए अनिवार्य तथा नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था करेंगे। संविधान की उपयुक्त घोषणा के अनुसार प्रत्येक राज्य सरकार ने सभी बालकों को शिक्षित करने के लिए प्राथमिक, माध्यमिक तथा तकनीकी आदि सभी प्रकार के स्कूलों तथा विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों का आयोजन कर रही है।

छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों विशेषकर कमजोर वर्ग के बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा दिलाने वाला शिक्षा का अधिकार कानून 2009 को लागू हुए दो वर्ष पूरे हो गए है। अब तक देश के कमजोर वर्ग के करोड़ों बच्चों को गरीबी की

वजह से शिक्षा प्राप्त नहीं हो पाती थी, लेकिन इस कानून के लागू हो जाने के बाद ऐसी आशा की जा सकती है कि अब प्रत्येक बच्चे को सुगमता से शिक्षा प्राप्त हो जाएगी। गोपालकृष्ण गोखले ने सबसे पहले 19 मार्च, 1910 को केन्द्रीय धारा सभा में अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव को केन्द्रीय धारा सभा में विधेयक के रूप में पेश किया। पं0 मदन मोहन मालवीय और मोहम्मद अली जिन्ना भी उस समय इस केन्द्रीय धारा सभा के सदस्य थे। उन्होंने गोखले द्वारा प्रस्तुत इस विधेयक का समर्थन किया, परन्तु भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों ने सरकार के पक्ष में मत दिया और यह विधेयक 13 मतों के विरुद्ध 38 मतों से गिर गया। अत: गोखले द्वारा प्रस्तावित यह विधेयक केन्द्रीय धारा सभा में पास नहीं हो सका, परन्तु उनके द्वारा प्रस्तावित इस विधेयक से ब्रिटिश सरकार में खलबली अवश्य मच गई थी।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी देश में नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के समर्थक थे। 'नवजीवन' पत्र में लिखे गये एक लेख में गाँधीजी ने कहा था कि ''मैं भारत के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सिद्धान्त का दृढ़ समर्थक हूँ।'' उनके अनुसार, इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे बच्चों का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास हो सके। 1937 में महात्मा गांधी ने डॉ. जाकिर हुसैन के साथ मिलकर 'नई तालिम' की अवधारणा प्रस्तुत की। आज हमें वर्धा शिक्षा योजना, बुनियादी तालिम, बुनियादी शिक्षा, बेसिक शिक्षा और बेसिक एजुकेशन आदि कई नामों से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत 7 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की गई थी और इस बात पर बल दिया गया था कि सम्पूर्ण शिक्षा किसी आधारभूत शिल्प अथवा उद्योग पर आधारित हो।

1966 में कोठारी आयोग ने बच्चों के लिए समान शिक्षा की सिफारिश की थी। 1986 की शिक्षा नीति के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के लिए 1 किमी. की दूरी के अन्दर प्राथमिक स्कूल और 3 कि.मी. की दूरी के अन्दर उच्च प्राथमिक स्कूल खोलने की बात की गयी थी, साथ ही प्राथमिक स्कूलों की दशा सुधारने हेतु 'आपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना' प्रस्तुत की गई थी। भारत में बाल शिक्षा के क्षेत्र में नई अवधारणाओं का जन्म 1992-93 में तब हुआ जब भारत ने संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार चार्टर पर हस्ताक्षर किये। इस चार्टर का हस्ताक्षरकर्ता देश होने के कारण भारत को बाल शिक्षा को

मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता प्रदान करना आवश्यक हो गया। 1993 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'उन्नीकृष्ण बनाम आन्ध्र प्रदेश' के मामले में कहा गया कि शिक्षा का अधिकार संविधान के अध्याय तीन के अनुच्छेद 21 में उल्लिखित जीवन के मौलिक अधिकार का एक भाग है। 1993 के फैसले के बाद 2002 में 86वें संविधान संशोधन के द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया।

बच्चों के लिए मुफ्त व अनिवार्य शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से सर्वशिक्षा अभियान को अधिक कारगर बनाने के प्रयास भी किये जा रहे हैं। वर्ष 2001 में शुरू किये गये सर्वशिक्षा अभियान में आज देशभर के 12.3 लाख परिवारों के 19.4 करोड़ बच्चे शामिल हैं। केन्द्र व राज्य सरकारों की सहभागिता से चलने वाले इस अभियान के तहत अब तक 3,02,872 नये स्कूल, 2,42,608 नये स्कूल भवन व अन्य आधारभूत सुविधाओं के अलावा 10.30 लाख शिक्षकों की भर्ती और 35 लाख शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जा चुका है। वर्ष 2010–11 के तहत सर्व शिक्षा अभियान की मद में 15,000 करोड़ रुपये आवंटित किये गये थे। प्राथमिक स्तर पर सर्वशिक्षा अभियान के तहत शिक्षा तक बच्चों की पहुँच 99 प्रतिशत हो गयी है। साथ ही 6–14 वर्ष की आयु वर्ग में शिक्षा से वंचित छात्रों की संख्या में से 3–4 फीसदी कमी आई है। इस कार्यक्रम में विशेष ध्यान लड़कियों, अनुसूचित जाति व जनजातियों, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक समुदाय व शहरों में रह रहे अभावग्रस्त बच्चों पर है।

सर्व शिक्षा अभियान के साथ–साथ हमारे देश में शिक्षा के क्षेत्र में ऐसी बहुत सी योजनाएँ पहले से जारी हैं जिन्हें शिक्षा के अधिकार की अहम कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। मसलन, 1956 में शुरू किया गया बाल भवन इस दिशा में महत्वपूर्ण साबित हो सकता है। आज देश में राज्य स्तर पर 124 बाल भवन हैं जबकि 70 बाल भवन केन्द्र राष्ट्रीय बाल भवन से मान्यता प्राप्त है। इन बाल भवन केन्द्रों के जरिए स्कूल छोड़ चुके बच्चे, सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े बच्चे व अभावग्रस्त बच्चे मुख्य धारा में शामिल होने का एक और मौका पाते हैं। बाल भवन द्वारा चलाई जा रही बालश्री योजना 5–16 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों की प्रतिभा पहचानकर उन्हें पुरस्कृत कर, सुनहरे भविष्य की ओर प्रेरित करती है।

कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग व मुस्लिम समुदाय की लड़कियों के लिए उच्च प्राथमिक स्कूलों के

साथ छात्रावासों की व्यवस्था शामिल है। यह योजना उन क्षेत्रों के लिए लक्षित की गई है, जहाँ लोग स्कूलों से अधिक दूरी पर रहते हैं और लड़कियों के लिए सुरक्षित माहौल की सम्भावनाएँ सीमित हैं। ऐसे में अक्सर लड़कियों को स्कूल भेजने से मना किया जाता है। यह देखते हुए भी इस योजना के तहत ब्लाक में ही लड़कियों के लिए स्कूली छात्रावास व सुरक्षित माहौल की व्यवस्था की गयी। यह योजना अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग व मुस्लिम समुदाय की लड़कियों के लिए 75 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान करती है जबकि शेष 25 प्रतिशत गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली लड़कियों के लिए आरक्षित किया गया है।

शिक्षा गारंटी योजना तथा वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा सर्व शिक्षा अभियान का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके तहत स्कूली शिक्षा छोड़ चुके व उससे वंचित बच्चों को शिक्षा से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। कोशिश यह की जाती है कि बच्चों की आवश्यकता को देखते हुए, व्यक्तिगत तौर पर योजना बनाकर उसे प्राथमिक शिक्षा के दायरे में लाया जाय। इस योजना के तहत उन बस्तियों में शिक्षा उपलब्ध कराने के प्रयास किये जाते हैं, जहाँ एक किलोमीटर के दायरे में कोई स्कूल नहीं है, (पहाड़ी व रेगिस्तानी इलाकों में यह संख्या 15 तक मान्य है) शिक्षा गारंटी योजना के तहत स्कूली व्यवस्था की जा सकती है। यह अस्थायी व्यवस्था है, जिसके तहत 2 साल के भीतर प्राथमिक स्कूल की व्यवस्था करनी होगी। वही, 'वैकल्पिक शिक्षा की सुविधा' शिक्षा से वंचित, सड़क पर रहने वाले बच्चों, बाल श्रमिकों व कठिनाइयों में रह रहे बच्चों व नौ वर्ष से अधिक आयु वाले बच्चों, विशेषकर लड़कियों के लिए प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करती है। इसके अलावा मिड-डे-मील योजना के तहत योजना आयोग ने 11वीं पंचवर्षीय योजना में 48,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया था। वर्ष 2009 में महंगाई को देखते हुए इसमें और इजाफा किया था।

शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति को सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाकर उसे समाज व राष्ट्र के लिए उपयोगी बनाया जाता है। शिक्षा ही राष्ट्र का प्राण तत्व है। अत: स्वतंत्रता के छ: दशक बाद बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का स्वर्णिम सपना 'बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009' के रूप में साकार हुआ। इस अधिनियम के 1 अप्रैल 2010 से लागू होने के पश्चात् 6-14 वर्ष तक के प्रत्येक बच्चे को अपने सन्निकट के विद्यालय में नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा पाने का कानूनी

अधिकार मिल गया है। अधिनियम का मुख्य बिन्दु यह है कि गरीब परिवारों के बच्चे जो प्राथमिक शिक्षा से वंचित हैं, उन बच्चों के लिए निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया है। विधि आयोग के द्वारा निजी विद्यालयों में शिक्षा से वंचित बच्चों के लिए आरक्षण की सीमा 50 प्रतिशत करने की सलाह दी गयी थी।

यह विधेयक कैबिनेट द्वारा 2 जुलाई 2009 को स्वीकृत किया गया, राज्यसभा ने इस बिल को 20 जुलाई 2009 को, लोकसभा ने 4 अगस्त 2009 को पारित किया तथा 26 जुलाई 2009 ई. को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने के बाद 27 अगस्त 2009 को भारत सरकार के राजपत्र में प्रकाशित किया गया। 1 अप्रैल 2010 ई. से इसे लागू किया गया। 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा देने के प्रावधान वाला शिक्षा का अधिकार कानून 1 अप्रैल 2010 ई. को लागू होने के साथ ही संविधान के अनुच्छेद 21-ए के तहत शिक्षा का अधिकार मौलिक अधिकार में परिवर्तित हो गया।

शिक्षा का अधिकार कानून

- 6 से 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा पाने का अधिकार होगा।
- इन बच्चों को स्कूली फीस के साथ-साथ यूनिफार्म, बुक्स, परिवहन या मिड-डे-मील जैसी चीजों पर खर्च भी शून्य होगा।
- बच्चों को 1 किमी. के दायरे में स्कूल उपलब्ध कराना होगा।
- शिक्षा विभाग के लोग घर-घर जाकर स्कूल से छूटे बच्चे की तलाश करेंगे।
- अभिभावक की जिम्मेदारी होगी कि वे बच्चों को स्कूल भेजें।
- सत्र शुरू होने के छ: माह बाद तक बच्चों को प्रवेश दिया जायेगा।
- राज्य सरकारें 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए प्री-स्कूलिंग की व्यवस्था करेंगी।
- बच्चों को न तो अगली कक्षा में पहुँचने से रोका जायेगा न निकाला जायेगा और न ही बोर्ड परीक्षा उत्तीर्ण करना अनिवार्य होगा।
- कोई स्कूल बच्चों को प्रवेश देने से मना नहीं कर सकेगा। प्रत्येक 60 बच्चों को पढ़ाने के लिए कम से कम दो प्रशिक्षित शिक्षक होंगे।

- निजी स्कूलों में कैपिटेशन फीस और बच्चों के स्क्रीनिंग टेस्ट पर प्रतिबन्ध होगा।
- सभी निजी स्कूलों में पहली कक्षा में प्रवेश के दौरान कमजोर वर्ग के बच्चों के लिए 25 प्रतिशत सीटें, आरक्षित होंगी।
- सभी राज्य सरकारें तथा स्थानीय निकायों के लिए यह आवश्यक होगा कि उनके इलाके का प्रत्येक बच्चा स्कूल जाये।
- विकलांग, मंदबुद्धि बच्चों के लिए विशेष प्रशिक्षित शिक्षकों की व्यवस्था होगी।
- शिक्षकों के लिए न्यूनतम शैक्षिक योग्यता का पालन करना आवश्यक होगा।
- सिर्फ प्रशिक्षित शिक्षक पढ़ाने का कार्य करेंगे जबकि अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जायेगा।
- शिक्षकों को अनावश्यक सरकारी कार्यों से मुक्ति मिलेगी।
- जिन स्कूलों की आधारभूत संरचना ठीक नहीं है, उन्हें 3 वर्ष के अन्दर ठीक करना होगा अन्यथा उसकी मान्यता समाप्त कर दी जायेगी।
- शिक्षा का अधिकार कानून को लागू करने पर आने वाले खर्च को राज्य और केन्द्र सरकार मिलकर उठाऐंगी।

शिक्षा का अधिकार कानून एवं प्राथमिक शिक्षा की वर्तमान दशा

शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के बाद से, पिछले दो वर्षों में सरकार की विद्यालयी शिक्षा में सुधार करने के प्रति गंभीरता तो दिखायी दे रही है, परन्तु शिक्षा जगत से जुड़े विशेषज्ञों को इस बात में शक है कि क्या इस कानून का वास्तविक लाभ उन बच्चों को मिल सकेगा, जिनके लिए यह कानून बनाया गया है या यह कानून सिर्फ कागजों तक ही सीमित रह जाएगा।

नि:शुल्क एवं बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम के प्रावधानों को यथार्थ के धरातल पर उतारने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने उ.प्र. नि:शुल्क एवं बाल शिक्षा का अधिकार नियमावली 2011 अधिसूचित की है। इस नियमावली के कई प्रावधानों को लागू करने में बेसिक शिक्षा विभाग व्यावहारिक कठिनाइयाँ महसूस कर रहा है। शिक्षा के अधिकार अधिनियम की अनुसूची में दिये गये मानकों के अनुसार न तो स्कूलों में पढ़ाई हो रही है और न ही पर्याप्त शिक्षक हैं। नियमावली में प्रावधान है कि स्थानीय प्राधिकारी

(ग्राम पंचायत/नगर पंचायत/नगरपालिका/नगर निगम) अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को जन्म से लेकर 14 वर्ष तक की आयु प्राप्त होने तक के अभिलेखों का सर्वेक्षण के माध्यम से अनुरक्षण करेगा। इस प्रावधान का भी अनुपालन नहीं हो पा रहा है। निजी स्कूलों की 25 फीसदी सीटों पर अलाभकारी समूह और दूर्बल आय वर्ग के बच्चों को प्रवेश दिलाना भी विभाग के लिए असाध्य कार्य साबित हो रहा है। स्कूलों में शिक्षक की नियमित उपस्थिति और उनकी शिकायतों के निवारण के लिए भी उपयुक्त प्रणाली विकसित नहीं की जा सकी है।

चाइल्ड राइट एंड यू और पश्चिम बंगाल शिक्षा नेटवर्क द्वारा कराये गये सर्वेक्षण के मुताबित बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के दो साल बाद भी पश्चिम बंगाल के ग्रामीण इलाकों में इसका क्रियान्वयन चुनौती बना हुआ है। नेटवर्क ने दो माह के सर्वेक्षण के बाद प्रस्तुत की गयी इस रिपोर्ट में कहा है कि नौ जिलों में 1210 बच्चों ने शिक्षा पूरी करने के पहले ही स्कूल छोड़ दिया। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार, देश में 6–14 वर्ष के 19 करोड़ बच्चे आज भी स्कूल नहीं जा पा रहे हैं। बिहार में स्कूल जाने की उम्र वाले 50 प्रतिशत बच्चे स्कूल से दूर हैं। छत्तीसगढ़, उड़ीसा, अरुणांचल प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में भी यह संख्या बहुत अधिक है।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार जिन बच्चों द्वारा स्कूल में दाखिला ले लिया जाता है, वे भी बीच में पढ़ाई छोड़ देते हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के 2005–06 के आकड़ों के अनुसार, कक्षा एक से कक्षा आठ तक सभी वर्गों के विद्यार्थियों द्वारा विद्यालय छोड़ने का प्रतिशत 48.80 है, वहीं अनुसूचित जाति व जनजाति के बच्चों के लिए क्रमश: 55.17 प्रतिशत तथा 62.87 प्रतिशत तक है।

इन सभी आंकड़ों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल कानून बना देने मात्र से प्राथमिक शिक्षा की दशा और दिशा नहीं बदली जा सकती है। जब तक इस कानून को लागू करने में आने वाली कठिनाइयों एवं समस्याओं का समाधान करने के लिए व शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए कोई योजना तैयार कर उसे क्रियान्वित नहीं किया जाएगा, तब तक इस कानून को सफलतापूर्वक लागू नहीं किया जा सकेगा।

शिक्षा का अधिकार कानून की कमियां

इस कानून में निम्न बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं–

- इस कानून के तहत सभी स्कूलों में न्यूनतम मानक लागू करने का कोई प्रावधान नहीं

है। हमारे देश में सामाजिक वर्गीकरण के साथ-साथ स्कूलों का भी वर्गीकरण अधिनियम की धारा 2छ के अनुसार चार वर्गों में किया गया है–

(1) सरकारी स्कूल (2) अनुदान प्राप्त निजी स्कूल (3) विशेष श्रेणी के स्कूल (केन्द्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय आदि) और (4) अनुदान न पाने वाले निजी स्कूल।

- कानून के कई प्रावधान अनुदान प्राप्त निजी स्कूल, विशेष श्रेणी के स्कूल या अनुदान न पाने वाले निजी स्कूल पर लागू नहीं होते हैं।
- इस कानून में कोई भी भाषा नीति शामिल नहीं की गयी है। केवल यह कहा गया है कि शिक्षा का माध्यम यथासंभव बच्चों की मातृभाषा होगी। मातृभाषा की परिभाषा नहीं दी गई है, जिससे छोटे बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने का विकल्प खुला रखा गया है।
- इस कानून में 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों की शिक्षा को कोई महत्व नहीं दिया गया है। आज के समय में साधारणतया बच्चे 3 वर्ष की आयु से स्कूल जाना प्रारम्भ कर देते हैं। इस कानून के अन्तर्गत इन बच्चों की शिक्षा के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गयी है।
- इस कानून में कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा देने की बात कही गयी है। जबकि कक्षा 12 की शिक्षा पूरी किये बिना, आज के समय में ना तो कोई रोजगार प्राप्त किया जा सकता है और ना ही उच्च शिक्षा हासिल की जा सकती है।
- यह कानून शिक्षकों को गैर-शिक्षण कामों में न लगाने की बात करते हुए भी उनकी ड्यूटी जनगणना, आपदा राहत और सभी प्रकार के चुनावों में लगाने की छूट देता है। चूँकि सिर्फ सरकारी शिक्षकों को ही इन कामों में लगाया जाता हैं। अत: इससे सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों की शिक्षा ही प्रभावित होती है। अधिकतर गरीब बच्चे इन सरकारी स्कूलों में ही पढ़ते है। अत: यह गरीब बच्चों के साथ इस कानून के द्वारा किया गया एक और भेदभाव है।
- धारा 2ठ की परिभाषा के मुताबित कैपिटेशन फीस वह शुल्क है, जो स्कूल द्वारा अधिसूचित फीस के अतिरिक्त हो। अत: यह कानून अप्रत्यक्ष रूप से निजी स्कूलों

को अधिसूचित करके मनचाही फीस लेने का अधिकार देता है। परिणामतया निजी स्कूल बिना रसीद के अन्य तरीके से कैपिटेशन फीस लेना जारी रख सकते हैं। अगर किसी स्कूल को दोषी पाया गया तो उसके लिए सजा भी बहुत कम रखी गयी है (कैपिटेशन फीस का 10 गुना जुर्माना)।

- कानून के तहत कहा गया है कि प्रशिक्षित शिक्षक पढ़ाने का कार्य करेंगे, जबकि अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाएगा। हमारे देश में विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों में लाखों की संख्या में अप्रशिक्षित शिक्षक लगे हुए हैं, जबकि हमारे देश में शिक्षकों को समुचित ट्रेनिंग देने वाली संस्थाओं का अभाव है। ऐसे में इस लक्ष्य को प्राप्त कर पाना कठिन प्रतीत हो रहा है।

शिक्षा का अधिकार कानून को सफल बनाने हेतु सुझाव

यदि हम यथार्थ रूप में अपने देश के सारे बच्चों को अच्छी, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देना चाहते हैं, तो हमें शिक्षा का अधिकार कानून 2010 को सफल बनाने हेतु निम्न सुझावों को ध्यान में रखते हुए इस कानून को क्रियान्वित करना होगा।

- देश में समान स्कूल प्रणाली लागू की जानी चाहिए जिसमें एक जगह के सारे बच्चे अनिवार्य रूप से एक ही स्कूल में पढ़ने चाहिए।
- पूर्व प्राथमिक से लेकर कक्षा 12 तक की शिक्षा को अनिवार्य व नि:शुल्क किया जाना चाहिए।
- शिक्षा में अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व को समाप्त किया जाना चाहिए। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए।
- शिक्षकों से गैर-शिक्षकीय कार्य लेना पूरी तरह से बंद किया जाना चाहिए।
- संसद में शिक्षा का अधिकार अधिनियम को प्रस्तुत करते हुए स्वयं मानव संसाधन विकास मंत्री ने स्वीकार किया था कि देश में प्राथमिक स्कूलों में शिक्षकों की संख्या वर्तमान आवश्यकता की आधी है व यह भी स्वीकार किया था कि राज्यों में पर्याप्त संख्या में स्कूल नहीं हैं। अत: स्पष्ट है कि देश में 6-14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने हेतु केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों को मिलकर नये स्कूलों का निर्माण करवाना चाहिए।

- शिक्षा का अधिकार कानून में शिक्षक छात्र अनुपात 1:20 सुनिश्चित किया गया है, जिसके लिए योग्य शिक्षकों की नियुक्ति अधिक संख्या में किये जाने की आवश्यकता है।
- शिक्षा में सभी प्रकार का भेदभाव और गैर-बराबरी समाप्त की जानी चाहिए।
- शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु समुचित संस्थाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए व कर्त्तव्य निर्वाह न करने वाले शिक्षकों पर कानूनी कार्यवाही की जानी चाहिए।
- कोई भी स्कूल कैपिटेशन फीस प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से ना ले सके, इस पर रोक लगाने हेतु सभी स्कूलों में फीस की एक समान राशि निश्चित की जाना चाहिए व अगर कोई स्कूल दोषी पाया जाता है तो उसके लिये कठोर दंड का प्रावधान होना चाहिए।
- जो अभिभावक 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को स्कूल नहीं भेजते हैं, उनके लिये भी कठोर दंड का प्रावधान होना चाहिए।

नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून का लागू होना देश के बच्चों की शिक्षा के लिए उठाया गया प्रशंसनीय कदम है। यह कानून सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक बच्चे को गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा का अधिकार प्राप्त हो और वह इसे परिवार, राज्य एवं केन्द्र की सहायता से पूरा करे। यह कानून सैद्धान्तिक रूप से तो आदर्श है, परन्तु अभी व्यावहारिकता की कसौटी पर खरा उतरेगा या नहीं, यह प्रश्न अभी भविष्य की गर्त में है। यदि इस कानून में उपरोक्त सुझावों को ध्यान में रखते हुए कुछ परिवर्तन किये जाएँ तो शायद वो दिन दूर नहीं जब हम शत-प्रतिशत साक्षर होंगे। देश में ऐसी तमाम योजनाएँ हैं, जो समाज के लगभग हर वर्ग को शिक्षा से जोड़ सकती हैं। शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के बाद सरकार के पास समय निर्धारित हैं और लक्ष्य बहुत व्यापक। शिक्षा को सरकार को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी होगी। यह देखना जरूरी है कि इस मद में जो पैसा आवंटित किया जा रहा है, उसका कितना प्रभावकारी ढंग से इस्तेमाल हो पाता है। ऐसे में जरूरत है कि सभी योजनाओं का क्रियान्वयन सही ढंग से किया जाय। जरूरी यह भी है कि देश के भविष्य की तैयारी केवल सरकार पर न छोड़ी जाय बल्कि निजी क्षेत्र व गैर-सरकारी संगठन सक्रिय रूप से इसमें हिस्सेदारी निभाएँ। वहीं देश का हर शिक्षित नागरिक देश की अगली पीढ़ी को शिक्षित करने की कुछ जिम्मेदारी अपनी भी समझे

क्योंकि समाज केवल संस्थानों व संगठनों से नहीं बल्कि हर व्यक्ति के साथ जुड़ने से ही बनता है।

सन्दर्भ

वार्षिक रिपोर्ट : 2010-11, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।

शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, एन.आर. स्वरूप सक्सैना, आर. लाल बुक डिपो।

भारतीय आधुनिक शिक्षा, जुलाई-अक्टूबर, 2006

शिक्षा का अधिकार, ममता महरोत्रा, महेश शर्मा।

योजना, मार्च-2011

योजना, दिसम्बर-2011

कुरूक्षेत्र, सितम्बर-2012

परमिता जनवरी-मार्च, 2012

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 19, अंक 1, अप्रैल 2012

शोध टिप्पणी/संवाद

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में विभिन्न शिक्षण विधियों की उपादेयता

आर.पी. पाठक* एवं **नविता कुमारी****

औपचारिक भाषा में शिक्षा एक त्रिस्तम्भीय प्रक्रिया है जो विद्यालय की सीमाओं के अन्दर संचालित की जाती है। शिक्षा के तीनों स्तम्भों-शिक्षक, शिक्षार्थी तथा विषय का गहरा सम्बन्ध है। इन तीनों में सम्बन्ध स्थापित करने में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अधयापक की है। इस महत्त्वपूर्ण संबंध में पहला रूप शिक्षक और शिक्षार्थी से संबंधित है, जिसमें अध्यापक शिक्षण करते हुए बालक की रुचियों, योग्यताओं, अभिक्षमताओं को समझते हुए उसके व्यक्तिगत भेदों पर ध्यान देने के उपरान्त शिक्षार्थी के साथ सहानुभूति का भाव विकसित करता है। दूसरा रूप शिक्षार्थी तथा विषय से संबद्ध है, इस भाग में शिक्षण के कुछ निर्देशों तथा सूचनाओं को देना है, जिन पर आज अधिक बल दिया जाता है। सूचना और ज्ञान बालक को तब तक हस्तान्तरित नहीं किये जा सकते, तब तक बालक ज्ञान को ग्रहण करने के लिए उत्सुक नहीं है। शिक्षण में सीखना सम्मिलित है। परन्तु शिक्षण को सीखने का मुख्य अंग नहीं कहा जा सकता है। शिक्षण बालक को सीखने तथा स्वयं कार्य करने में सहायता प्रदान कर सकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिक्षण बालक को सीखने की प्रेरणा देना है। शिक्षण एक कौशल पूर्ण व्यवसाय है। प्रत्येक शिक्षक को यह कौशल अर्जित करना अत्यन्त आवश्यक है। यह एक कला है क्योंकि इसका कार्य मानव व्यवहार में सुधार करना है। मानव व्यवहार में सुधार वर्तमान मानव के विकास और वृद्धि के सिद्धान्तों पर भी आधारित है। प्रत्येक छात्र के विकास का क्रम उसकी व्यक्तिगत विभिन्नता और

* प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र-विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली-16
** शोध-छात्रा, (शिक्षाशास्त्र-विभाग) श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली-16

वातावरण पर अधिक निर्भर करता है अत: विभिन्न आयु वर्ग के छात्रों के शैक्षिक उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए शिक्षण विधियों का चुनाव किया जाता है जिसके फलस्वरूप छात्र का सम्पूर्ण सामाजिक एवं बौद्धिक विकास हो सके।

वर्तमान समय में छात्रों के सभी आयामों के विकास को ध्यान में रखते हुए सभी प्राचीन एवं आधुनिकतम शिक्षण विधियाँ जो कि मनोविज्ञान के नवीन और परिष्कृत सिद्धांतों पर आधारित और जाँची परखी गयी हैं, का समुचित प्रयोग हो रहा है।

शिक्षण विधियाँ

शिक्षण की सफलता शिक्षण की विधियों पर निर्भर करती है। आज यदि बालक की गुणवत्ता कम हो रही है तो इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका लचर अध्यापन कला का होना भी है। कहना न होगा कि आज जितनी भी असामान्य प्रवृत्तियाँ शिक्षा में पाई जाती है उनके प्रति हमें सतर्क हो जाना चाहिए। भारत के प्रमुख शिक्षाविदों एवं चिंतकों ने अपने दर्शन में शिक्षण क्रिया को अधिगम के लिए अत्यन्त आवश्यक तत्त्व माना है। मनोविज्ञान और दर्शन शिक्षण के लिए अनेक विधियों की पूरी श्रृँखला हम सबके सामने प्रस्तुत करते हैं। शिक्षण विधियों को यदि प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जाये तो शिक्षण अधिगम प्रक्रिया सुचारु रूप से चलती रहेगी। शिक्षण विधि जितनी प्रभावपूर्ण होगी अधिगम उतना ही प्रभावपूर्ण होगा और दीर्घ अवधि तक बालकों की ज्ञान पेटिका ज्ञान से भरी रहेगी। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में वास्तविक वस्तुओं के प्रयोग से अधिगम अधिक होता है। कहते हैं कि वास्तविक वस्तुओं के सम्पर्क में आने में जो छात्रों के सामने उपस्थित हैं उनकी निरीक्षण तथा तर्क शक्ति का विकास अधिक होता है।

व्यावहारिक रूप से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में देखा गया है कि छात्रों के वास्तविक वस्तुओं के सम्पर्क में आने से उनकी निरीक्षण तथा तर्क शक्ति का अधिक विकास होता है। छात्रों में असीम शक्ति एवं जिज्ञासा होती है। छात्रों में व्यक्तिगत विभिन्नतायें भी होती हैं। जिन्हें पर्याप्त महत्त्व दिया जाना चाहिए। अनेक शिक्षाशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों के चिन्तन का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि शिक्षण विधि बालक के अधिगम को प्रभावित करती है। शिक्षण के दौरान विभिन्न शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है उनमें प्रमुख पद्धतियाँ प्राचीन पद्धतियाँ हैं जैसे व्याख्यान विधि, निगमन विधि, आगमन विधि आदि। परन्तु आधुनिक सन्दर्भ में ऐसी विधियों का प्रयोग किया जाता है जो

मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित हों। इन विधियों में मुख्यत: निम्नलिखित विधियाँ सामान्यत: प्रयोग में लायी जाती हैं।

1. मौखिक विधि
2. स्वाध्याय विधि
3. क्रिया द्वारा सीखना
4. भ्रमण विधि
5. वाद-विवाद विधि
6. प्रयोग विधि
7. आगमन विधि
8. निगमन विधि
9. व्याख्यान विधि

1. मौखिक विधि

इस विधि का प्रयोग भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति में किया जाता था। वर्तमान शिक्षाशास्त्रियों द्वारा भी इस पद्धति के महत्त्व को स्वीकार किया जाता है। जब किसी विषय को क्रिया तथा प्रयोग के माधयम से सीखना सम्भव न हो, तब तक एक शिक्षक उस विषय को पढ़ाने के लिए मौखिक विधि का प्रयोग निर्विवाद रूप से कर सकता है। जब विषय वस्तु को समझाने में अन्य बाह्य कारकों का उपयोग किया जाये और वह बाह्य कारक अधिक खर्चीले, पहुँच से परे एवं कम प्रासंगिक हो तो इस स्थिति में मौखिक विधि का प्रयोग उचित होता है। कहीं-कहीं पर विषयवस्तु की अधिक जटिलता भी छात्रों के ज्ञानार्जन में रुकावट का कार्य करती है। ऐसी स्थिति में शिक्षक द्वारा उसी विषयवस्तु को सरल रूप में मौखिक विधि द्वारा समझाना अधिक श्रेयस्कर होगा।

2. स्वाध्याय विधि

जब किसी विषयवस्तु को बालक स्वयं के प्रयत्न एवं चिन्तन के द्वारा सीखता है तो वह ज्ञान अधिक स्थायी होता है। एक शिक्षक को चाहिए कि वह बालक को चिंतन करने का वातावरण प्रदान करें और छात्रों को चिन्तन हेतु प्रोत्साहित करे। स्वाध्याय भी प्राचीन शिक्षण पद्धतियों में से एक प्रमुख विधि है। स्वाध्याय विधि को सावधानी पूर्वक शिक्षक

तथा शिक्षार्थी दोनों को प्रयोग में लाना चाहिए। स्वाध्याय विधि में बालक को भाषा का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। पाठ को पढ़कर समझने की योग्यता छात्र में पहले से विकसित होनी चाहिए तथा बालक स्वाध्याय के बल पर लोगों के साथ विचार-विमर्श एवं शंकाओं का समाधान स्वयं कर सकता है।

3. क्रिया द्वारा सीखना

रवीन्द्रनाथ टैगोर के द्वारा कहा गया है कि ''मनुष्य को जीवन में अधिक से अधिक सक्रिय होना चाहिए। इससे वह अपने अन्तर्निहित गुणों को व्यक्त करता है और दूर की वस्तुओं को अपने निकट समेटता है। इस प्रकार क्रियाशील बनकर अपनी वास्तविकताओं को प्रकट कर मनुष्य बराबर नई-नई वस्तुओं का अनुभव करता है।'' उनका मानना था कि छात्र को शिक्षा केवल क्रिया के माधयम से दी जानी चाहिए। क्रिया ऐसी होनी चाहिए जो बालक के मस्तिष्क पर अपना प्रभाव छोड़ सके। मनुष्य एक मनो शारीरिक प्राणी है। अत: हम शरीर और क्रिया की निर्भरता की अवधारणा को नकार नहीं सकते, क्योंकि किसी भी क्रिया का बालक के मस्तिष्क पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य होता है। क्रिया के द्वारा बालक अपने रुचि के विषयों को जान सकता है और अपने अनुसार उन विषयों को सहजता के साथ सीख सकता है। साथ ही साथ अरुचिकर परन्तु उपयोगी विषयों को क्रिया-कलापों के द्वारा अधिक रुचिकर रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

4. भ्रमण विधि

प्रकृतिवादी शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार भ्रमण विधि सबसे उत्तम विधि मानी जाती है। भ्रमण द्वारा सीखना हमारी मानसिक शक्तियों को सतर्क रखता है। यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि जो वस्तु प्रत्यक्ष रूप में दिखलाई पड़ती है उसकी छवि मस्तिष्क पटल पर अधिक समय तक रची बसी रहती है। इतिहास एवं भूगोल विषयों को केवल भ्रमण विधि के द्वारा अधिक उपयोगी रूप में पढ़ाया जा सकता है। अन्यथा अन्य विधियों द्वारा इन विषयों का शिक्षण मात्र औपचारिक रूप से होता है।

5. वाद-विवाद विधि

किसी विषय को यदि गहराई से समझाना हो तो उस विषय पर वाद-विवाद कराना चाहिए। किसी एक विषय पर यदि दस व्यक्ति वाद-विवाद करते हैं तो इस दृष्टिकोण से हमारे अन्दर समझ उत्पन्न हो जाएगी। फलस्वरूप वह विषय अधिक तार्किक रूप से

समझा जा सकेगा। अब आप कल्पना करें। किसी विषयगत समस्या को हमारे समक्ष दस हल हैं तो वह समस्या समस्या न रहकर एक खुली किताब रह जाएगी, जिसमें उस समस्या से सम्बन्धित प्रत्येक तत्त्व की चर्चा उस किताब में आपको मिल जाएगी।

विभिन्न शोधों के निष्कर्ष से यह बात सिद्ध है कि जो बालक अधिक प्रश्न पूछता है उसका उतना ही अधिगम अधिक होता है। प्राचीन भारतीय परम्परा में उपनिषदों में नचिकेता आदि का वर्णन मिलता है। संसार में कोई भी ऐसी समस्या नहीं है जिसका हल वाद-विवाद के माध्यम से उपनिषदों में न किया गया हो।

6. प्रयोग विधि

प्रयोग विधि में प्रदर्शन, अनुकरण तथा अभ्यास को मुख्यत: शामिल किया गया है। प्रदर्शन के समय विषयवस्तु के वास्तविक रूप-स्वरूप से परिचित हुआ जा सकता है। फलस्वरूप बहुत से व्यक्ति उसको समझ सकेंगे एवं उन्हें अपने-अपने मानदंडों पर जाँच सकेंगे। उत्साहजनक एवं अनुकूल परिणामों के प्राप्त होने पर उन प्रयोगों का अभ्यास भी किया जा सकता है। इस विधि में प्रमुखता से शिक्षक द्वारा छात्रों में रुचि और विषय के प्रति अनुराग उत्पन्न किया जाता है।

7. आगमन विधि

आगमन विधि का प्रयोग बच्चों की तार्किक क्षमता को बढ़ाने के लिए किया जाता है। मुख्यत: यह विधि प्राइमरी स्तर के विद्यार्थियों में किसी विषय के प्रत्यय को समझाने एवं उच्च शैक्षिक आधार तैयार करने में अधिक प्रभावकारी सिद्ध होती है। विशिष्ट आयु वर्ग के बच्चों में अमूर्त चिंतन के द्वारा विषय विशेष को समझाने में अधिक समस्या आती है। लेकिन मूर्त चिन्तन के द्वारा अमूर्त चिन्तन को चैतन्य अवश्य किया जा सकता है। गणितीय सूत्रों, वैज्ञानिक धारणाओं और सिद्धांतों को समझाने के लिए आगमन विधि अत्यन्त उपयोगी एवं सपफल है। बालकों के दैनिक जीवन के कार्यकलापों एवं लघु जीवन के अनुभवों को आधार मानकर सामान्य से विशिष्ट की अवधारणा को आसानी से समझाया जा सकता है। अत: इस प्रकार हम देखते हैं कि आगमन विधि की उपादेयता कम उम्र के बालकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और गणितीय तार्किकता को बढ़ाने में प्रभावकारी रूप से समझ में आती है।

8. निगमन विधि

जैसे-जैसे बालक प्राइमरी कक्षाओं से उच्च स्तर की कक्षाओं में गमन करते हैं तो उनकी बौद्धिक क्षमताओं में भी परिवर्तन आता है। प्राय: सामान्य विकास होने लगता है। किसी विषय विशेष से जुड़ी समस्याओं एवं तथ्यों को किशोर विचारशील ढंग से ग्रहण करने का प्रयत्न करता है। इस दौरान उनको मूर्त उदाहरणों की आवश्यकता नहीं होती है। अपितु प्रारब्ध के आधार पर वे विषय को समझने का प्रयास करते हैं। अत: इस विषय विशेष के सिद्धान्त एवं सूत्रों को वे सीधे ग्रहण कर लेते हैं। दूसरा पक्ष निगमन विधि के सन्दर्भ में यह भी है कि विषय एवं पाठ्यक्रम की व्यापकता के आधार पर शिक्षक द्वारा मात्र मुख्य सूत्रों एवं सिद्धान्तों को समझाना ही पर्याप्त होता है। इस प्रकार निगमन विधि का प्रयोग विशिष्ट तथ्यों से सामान्य तथ्यों का समझाना है। जिसके फलस्वरूप समय, ऊर्जा का कम ह्रास होता है एवं बालक के ज्ञान में आशानुरूप वृद्धि होती है। प्राचीन काल में निगमन विधि का प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता था। सभी सूत्रों को कंठस्थ करके किसी विषय को समझने और समझाने का प्रयत्न किया जाता था। भारतीय षड्दर्शन के सूत्रों के माधयम से उच्च स्तर पर छात्रों को आगमन एवं निगमन दोनों विधियों से पढ़ाना अधिक उचित होगा। क्योंकि ज्ञान के प्रस्फुटन से प्रत्येक विषय में पूरा वर्णन उपलब्ध है। नित नये क्षेत्र एवं प्रत्यय सामने आ रहे हैं। अत: शिक्षक विषय एवं प्रकरण की माँग के अनुसार आगमन एवं निगमन विधि का उद्देश्यानुसार प्रयोग कर सकता है।

9. व्याख्यान विधि

व्याख्यान विधि का प्रयोग विषय की सारगर्भिता से छात्रों को परिचित कराना होता है। व्याख्यान विधि में किसी जटिल विषय या प्रत्यय को व्याख्याता अधिक सुगमता एवं सरलता से बच्चों के समक्ष रोचक रूप में प्रस्तुत करता है। इस विधि की प्रासंगिकता व्याख्याता के कौशल पर निर्भर करती है। व्याख्याता को व्याख्यान से पूर्व विषय विशेष में पारंगत होना अति आवश्यक है। साथ ही साथ उसे शाब्दिक और अशाब्दिक व्यवहार में निपुण होना भी व्याख्यान में छात्रों के कौतूहल को बनाये रखने के लिए उपयोगी होता है। व्याख्यान के समय उस कालचक्र की घटनाओं को विषय विशेष से जोड़कर या उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करके रोचकता बनायी जा सकती है। इस प्रकार इस विधि की सफलता व्याख्याता के व्यक्तिगत कौशल, समसामयिक घटनाओं के प्रति जागरूकता और रोचक शैली पर अधिक निर्भर करती है। व्याख्यान जितना रोचक होगा बालक उतने

ही ध्यानपूर्वक सुनेंगे और विषय वस्तु को ग्रहण कर सकेंगे।

अत: कहा जा सकता है कि शिक्षण विधियों की उपादेयता अधिगम में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यहाँ उपयोगी शिक्षण विधियों की सीधी चुनौती उन शिक्षण पद्धतियों से है जो बालक के मस्तिष्क में केवल सूचनाएँ ठूँस देना चाहते हैं। किसी विषय से संबद्ध केवल सूचना मात्र ही अधिगम नहीं कहलाता है। अधिगम वह है जो बालक के व्यवहार में स्थायी परिवर्तन कर सके, जिसके फलस्वरूप बालक आत्मोत्सर्ग की ओर अग्रसर हो सके। शिक्षण पद्धतियों का वास्तविक रूप में प्रयोग करना शिक्षण को सफल बना सकता है। शिक्षण विधियों के माधयम से ही शिक्षण को रोचक बनाया जा सकता है। आज मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियों पर शोध को महत्त्व दे रहे हैं। परन्तु शिक्षण निरुद्देश्य सा प्रतीत होता है जब अध्यापक किसी विषय वस्तु को समझाने में असफल रहता है। बालक के अन्त:करण में असीम शक्तियाँ विद्यमान हैं। उन शक्तियों को केवल शिक्षण विधियों के माध्यम से ही जागृत किया जा सकता है। शिक्षण विधियों के द्वारा छात्र की बुद्धिलब्धि के स्तर को बढ़ाया जा सकता है। अत: शिक्षण विधियों की उपादेयता मात्र शिक्षक द्वारा सूचना के प्रसारित करने मात्र से नहीं है। अपितु इन विधियों की उपादेयता छात्रों को उनके अधिकतम बौद्धिक स्तर पर ले जाने में है, जहाँ पहुँचकर वे एक सभ्य समाज के आदर्श नागरिक बन सकें। आज के समय-शिक्षण में विधियों की प्रासंगिकता उनमें निहित मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में हैं। इनका सही और उचित कार्यान्वयन शिक्षक ही कर सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ

उपाध्याय राजेश एवं पाण्डेय सरला, *शैक्षिक तकनालॉजी के आयाम,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

गुप्ता एस.पी., *आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन,* शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, परिवर्धित संस्करण, 2001

चतुर्वेदी पण्डित सीताराम, *शिक्षा प्रणालियाँ और उनके प्रवर्त्तक,* नन्दकिशोर एवं ब्रदर्स, वाराणसी

पाठक आर. पी. एवं पाण्डेय अमिता, *शैक्षिक प्रौद्योगिकी एवं क्रियात्मक अनुसन्धान,* कनिष्का प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली

मिश्रा एस., *अधिगम का मनोसामाजिक आधार एवं शिक्षण,* श्री कविता प्रकाशन, 13 बी. सी., गुप्ता गार्डन, गोविन्द नगर, आमेर रोड, जयपुर

अहलूवालिया एस.एल., *ऑडियो विजुअल हैण्डबुक,* दिल्ली, एनसीईआरटी, 1967

बलार्ड कोटेड बाई मंगल, एस.के. *टीचिंग फिजिकल एंड लाइफ साइंस,* दिल्ली आर्य बुक डिपो

ब्लूम बी.एस., *टैक्सोनॉमी आफ एजुकेशनल आब्जेक्टिव : द कागनिटिव डोमैन,* न्यूयार्क : कॉगमैन ग्रीन, 1956

स्टोनेंसन, जे.ए. द *परफैक्ट मैथर्ड आफ टीचिंग,* न्यूयार्क, 1921, *कोटेड बाई बिंगिंग एंड बिंगिंग, टीचिंग द सोशल स्टडीज इन सेकेण्डरी स्कूल,* न्यूयार्क, एम.सी. ग्रो एनएचआई, 1952

योकामा जी.ए. सिम्प्रोन एंड आर.जी., *मॉडर्न मैथर्ड एंड टेक्नीक्स आफ टीचिंग,* न्यूयार्क, मेमीलन, 1948

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 19, अंक 1, अप्रैल 2012

शोध टिप्पणी/संवाद

उच्च प्राथमिक विद्यालय में कार्यरत शिक्षकों द्वारा दृश्य-श्रव्य संचार माध्यमों का उपयोग

हरीश चन्द्र जोशी*

आदिकाल से ही संचार व्यवस्था मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता रही है। सूचना संप्रेषण की लालसा ने मनुष्य को मेघ, वायु, चांद आदि प्रकृति के अन्य उपादानों तक का अवलंबन लेने को बाध्य किया है और पक्षियों तक को संदेश वाहक बनाना पड़ा है। लेकिन सभ्यता के विकास तथा वैज्ञानिक प्रगति ने निरन्तर नयी विधियों और माध्यमों का विकास किया, फलतः संचार व्यवस्था युगानुरूप व्यवस्थित व तीव्रगामी रूप धारण करती चली गयी और आज मनुष्य हर क्षेत्र में नई-नई खोज कर नई बुलंदियों को छूने लगा है।

आज विश्व में ज्ञान का तेजी से विस्तार हो रहा है। विद्यालयी शिक्षण के पाठ्यक्रम में अधिकाधिक ज्ञान का समावेश किये जाने की माँग बढ़ रही है, और राष्ट्रीय एवं विश्व स्तर पर हो रहे परिवर्ततनों को देखते हुए विषय वस्तु और शिक्षण प्रक्रिया के तौर-तरीकों में भी परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होने लगी है। इस संदर्भ में दृश्य-श्रव्य/संचार माध्यमों की भूमिका सामने आती हैं। शैक्षिक तकनीकी का ज्ञान व कौशल न केवल शिक्षक को प्रभावी अध्यापक बनाता है, अपितु विद्यार्थियों को ज्ञान का सृजन करने तथा सहायता देने में उपयोगी होता है। इसलिए शिक्षक को दृश्य-श्रव्य/संचार तकनीकी के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों ही प्रकार के ज्ञान एवं कौशल विकास की आवश्यकता है।

कुछ दशक पूर्व उत्तराखंड के पर्वतीय ग्रामीण अंचलों में रेडियो ही संचार माध्यमों में सशक्त रूप में जाने जाते थे, लेकिन आज अपनी विशिष्टताओं के कारण दूरदर्शन, कम्प्यूटर, इण्टरनेट, मोबाइल फोन, समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ भी सशक्त प्रभावशाली

* प्रवक्ता, सेवापूर्व शिक्षा विभाग, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, अल्मोड़ा

संचार माध्यम बनते जा रहे हैं। उत्तराखण्ड शासन द्वारा प्रदेश के प्रत्येक माध्यमिक विद्यालयों में सुसज्जित कंप्यूटर लैब व कंप्यूटरों की व्यवस्था कंप्यूटर शिक्षा दी जाने हेतु की गयी है। उत्तराखण्ड शासन द्वारा उच्च प्राथमिक विद्यालयों के काल्प नवाचार के रूप में कंप्यूटर प्रदान कर विषय से संबंधित शीर्षकों पर सी.डी. के द्वारा रोचक शिक्षण प्रक्रिया की कल्पना की गयी है।

विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास व शिक्षक का व्यक्तित्व संचार माध्यमों के उचित उपयोग से ही संभव है। शिक्षा के अंतर्गत कक्षा शिक्षण प्रक्रिया में तथा अर्जित ज्ञान के संप्रेषण में संचार माध्यमों की उक्त उपयोगिता को देखते हुए शोधकर्त्ता ने ''जनपद अल्मोड़ा के काल्प आच्छादित उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों द्वारा दृश्य-श्रव्य/संचार माध्यमों का उनकी क्षमता संवर्धन एवं शिक्षण के उपयोग का अध्ययन'' करने का निर्णय लिया।

समस्या कथन

जनपद अल्मोड़ा के काल्प आच्छादित उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों द्वारा दृश्य-श्रव्य संचार माध्यमों का उनकी क्षमता संवर्धन एवं शिक्षण में उपयोग का अध्ययन प्रस्तुत शोध की समस्या है। समस्या कथन में प्रयुक्त शब्दों को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जाता है।

उच्च प्राथमिक से तात्पर्य है- कक्षा 6, 7, 8 (जूनियर कक्षाओं) के शासकीय विद्यालयों में कार्यरत अध्यापक।

दृश्य-श्रव्य संचार माध्यम : जब संचार व्यवस्था के माध्यम से संप्रेषित ज्ञान या संदेश एक से अधिक इन्द्रियों की सहायता से ग्रहण किया जाता है। तो उसे बहु इन्द्रिय उपागम या दृश्य श्रव्य कहते हैं। यहाँ पर रेडियो, दूरदर्शन, कंप्यूटर, इंटरनेट, टेलीफोन (मोबाइल फोन), समाचार पत्र-पत्रिकाएँ हैं।

क्षमता संवर्धन : 21वीं सदी में शिक्षा की आवश्यकता एवं व्यवस्था के लिए विद्यमान चुनौतियों एवं अवसरों के परिप्रेक्ष्य में नई शिक्षा नीति 1986 के लक्ष्य एवं कार्यक्रमों की प्राप्ति हेतु अध्यापकों को नवीन शैक्षिक तकनीकी या आई.सी.टी. के द्वारा सतत् क्षमता संवर्धन कर उसे कक्षा-कक्ष तक ले जाना। अध्यापकों के द्वारा जनसंचार माध्यमों के द्वारा स्वयं का सामान्य ज्ञान, विषय ज्ञान, टी.एल.एम. ज्ञान, मूल्यों का ज्ञान,

क्रीड़ा संबंधी ज्ञान, कला कौशल ज्ञान प्राप्त कर उस ज्ञान को कक्षा-कक्ष प्रक्रिया के द्वारा बच्चों तक स्थानांतरित करना।

काल्प-कंप्यूटर एडेड लर्निंग प्रोग्राम (नवाचार)

अध्ययन का उद्देश्य

1. अध्यापकों द्वारा दृश्य-श्रव्य संचार माध्यमों का अपनी क्षमता संवर्धन तथा कक्षा शिक्षण में उपयोग की स्थिति की जानकारी प्राप्त करना।
2. उच्च प्राथमिक विद्यालयों में दृश्य-श्रव्य संचार माध्यमों की उपलब्धता की जानकारी प्राप्त करना तथा उपलब्ध सामग्री के उपयोग की जानकारी प्राप्त करना।
3. जनपद अल्मोड़ा में काल्प सी.डी. के वितरण, सी.डी. लोड/अवलोकन/शिक्षण में उपयोग की स्थिति की जानकारी प्राप्त करना।
4. कंप्यूटर प्रशिक्षित अध्यापकों की जानकारी प्राप्त करना तथा उनके द्वारा बच्चों को कराये गये कार्य की जानकारी प्राप्त करना।
5. अध्यापकों द्वारा संचार माध्यमों के उपयोग से किन-किन क्षेत्रों में क्षमता संवर्धन किया जा रहा है। उसकी जानकारी प्राप्त करना।

अध्ययन की सीमाएँ

समय सीमा को ध्यान में रखते हुए शोध कार्य में निम्न रूप से क्षेत्र को सीमित किया गया है।

1. प्रस्तुत शोधकार्य से अल्मोड़ा जनपद के 11 विकासखंडों के चयनित 52 विद्यालयों के 66 कार्यरत कंप्यूटर प्रशिक्षित शिक्षकों को लिया गया है, जिनके द्वारा डायट स्तर पर बेसिक कंप्यूटर प्रशिक्षित प्राप्त किया गया है।
2. प्रस्तुत शोध कार्य में शहरी व ग्रामीण पृष्ठभूमि के अध्यापकों का चयन किया गया है।

अध्ययन का शैक्षिक महत्व

संचार माध्यम मानव जीवन में सूचना संप्रेषण के साथ-साथ जीवन के प्रत्येक पहलू से तादात्म्य स्थापित करके वर्तमान मानव की मूलभूत आवश्यकता बन गये हैं। वर्तमान परिदृश्य में संचार माध्यम लोगों को उनके विकास के लिए बनायी गयी नीतियों और कार्यक्रमों के बारे में जानकारी देने और राष्ट्र निर्माण तथा स्वयं के विकास के प्रयास के

सक्रिय साझीदार बनाने के लिए प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। रेडियो, दूरदर्शन, कंप्यूटर, इंटरनेट, सेलफोन, समाचार पत्र–पत्रिका आदि के सशक्त माध्यम हैं।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

1. काल्प आच्छादित उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों द्वारा दृश्य–श्रव्य संचार माध्यमों का उपयोग अपने क्षमता संवर्धन में किया गया होगा।
2. अध्यापकों द्वारा संचार माध्यमों से प्राप्त ज्ञान विद्यालय एवं कक्षा–कक्ष प्रक्रिया में दिया जा रहा होगा।
3. काल्प सी.डी. का वितरण समस्त उच्च प्राथमिक काल्प आच्छादित विद्यालयों में किया गया होगा।
4. कंप्यूटर प्रशिक्षित अध्यापक स्वयं तथा बच्चों के सहयोग से पावर पाइंट स्लाइड द्वारा प्रोजेक्ट बनावा रहे होंगे।
5. काल्प आच्छादित विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों द्वारा क्षमता संवर्धन के विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त हो रही होगी।

अध्ययन की विधि

प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण विधि द्वारा अध्ययन किया गया है।

न्यादर्श का चयन

प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण में अल्मोड़ा जनपद के 11 विकासखंडों के 52 विद्यालयों का चयन जो काल्प आच्छादित थे, यादृच्छित (रेण्डम) विधि द्वारा किया गया। साथ ही प्रत्येक विद्यालय में शिक्षकों के चयन हेतु उनके द्वारा डायट स्तर पर अन्य किसी भी स्थान से किये गये कंप्यूटर के बेसिक कोर्स को आधार बनाया गया है। चयनित अध्यापक 66 जनपदों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

उपकरण

अध्ययन हेतु तैयार उपकरणों की सहायता से डायट के अनुभवी एवं प्रशिक्षित अकादमिक स्टाफ की सहायता से प्रदत्त संग्रह कार्य किया गया, जिसमें निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा गया।

1. **विद्यालय संबंधी विवरण :** विद्यालय के अभिलेखों के आधार पर प्रधानाध्यापक/ प्रधानाचार्य से जानकारी प्राप्त की गयी। इसमें 16 कथन हैं।

2. **शिक्षक प्रश्नावली :** विद्यालय में कार्यरत शिक्षक जिनके द्वारा कंप्यूटर का बेसिक कोर्स/प्रशिक्षण प्राप्त किया गया है, उन शिक्षकों से प्रपत्र भरवाया गया। इसमें 26 कथन हैं।

3. **क्षेत्र अन्वेषक की आख्या :** क्षेत्र अन्वेषक (डायट अकादमिक स्टाफ) को कुछ निर्धारित बिन्दुओं से विद्यालय में उपलब्ध संचार सामग्री, कक्षा-कक्ष में श्रव्य दृश्य का उपयोग, अवलोकन कर आख्या देने को कहा गया। इसमें 11 कथन हैं।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या

प्रस्तुत शोध सर्वेक्षण का उद्देश्य दृश्य-श्रव्य संचार माध्यमों का शिक्षकों द्वारा मुख्य रूप से अपने क्षमता संवर्धन तथा अर्जित ज्ञान का उपयोग कक्षा-कक्ष शिक्षण प्रक्रिया में स्थानांतरण का विश्लेषण करना था। विद्यालय एवं शिक्षकों से संबंधित प्रदत्तों का एकत्रीकरण किया गया। तत्पश्चात एकत्र किये गये प्रदत्तों का विश्लेषण कर अध्ययन के निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए।

निष्कर्ष

1. काल्प आच्छादित विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में क्षमता संवर्धन किया जा रहा है 78.78% शिक्षकों द्वारा सामान्य ज्ञान में, 77.27% शिक्षकों का विषयज्ञान में, 66.66% शिक्षकों द्वारा टी.एल.एम. में, 45.45% शिक्षकों द्वारा मूल्यों के ज्ञान में, 48.4% शिक्षकों द्वारा क्रीड़ा संबंधी ज्ञान तथा 51.51% शिक्षकों द्वारा कला कौशल संबंधी ज्ञान अर्जित कर छात्रों तथा विद्यालय स्टाफ को लाभान्वित किया जा रहा है।

2. शिक्षण प्रक्रिया में संचार माध्यमों के उपयोग की स्थिति के अवलोकन से स्पष्ट है कि अर्जित ज्ञान कक्षा-कक्ष तक जा रहा है। जिन संचार माध्यमों का शिक्षकों द्वारा उपयोग किया जा रहा है उनकी स्थिति इस प्रकार है– 87.87% शिक्षक नियमित रूप से समाचार पत्रों का अध्ययन करे हैं। 37.84% शिक्षक पाक्षिक, मासिक, वार्षिक पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन करते हैं। 15.15% शिक्षक रेडियो श्रवण, 19.69% शिक्षक दूरदर्शन (टी.वी.) 69.69% शिक्षक कंप्यूटर/इंटरनेट, 27.27% शिक्षक टेलाफोन/मोबाइल के माध्यम से ज्ञान अर्जित कर छात्र-छात्राओं को लाभान्वित कर रहे हैं।

3. काल्प आच्छादित विद्यालयों में दृश्य-श्रव्य संचार माध्यमों की उपलब्धता एवं उपयोग की स्थिति 75% विद्यालयों में कंप्यूटर दृश्य-श्रव्य संचार माध्यमों के रख

रखाव के लिए अलग कक्ष की व्यवस्था है जबकि 25% विद्यालयों में रेडियो, 19.23% विद्यालयों में टेपरिकार्डर, 11.53% विद्यालयों में टी.वी., 98.07% विद्यालयों में कंप्यूटर उपलब्ध हैं। 86.53% विद्यालयों में कंप्यूटर चालू हालत में है। 80.75% विद्यालयों में कंप्यूटर प्रशिक्षित शिक्षक कार्यरत हैं। 88.46% विद्यालयों में काल्प सी.डी. का वितरण हुआ है। 59.61% विद्यालयों में काल्प सी.डी. कंप्यूटर पर लोड की गयी है। 55.76% विद्यालयों में कंप्यूटर का उपयोग विषय शिक्षण में किया जा रहा है। 66.38% पेंटिंग में, 55.76% कार्यालय उपयोग में किया जा रहा है। 65.38% विद्यालयों में समाचार लेखन की व्यवस्था है। 88.46% विद्यालयों में संचार माध्यमों से अर्जित ज्ञान प्रात:कालीन सभी (प्रार्थना सभा) में देने की व्यवस्था की गयी है।

संदर्भ ग्रंथ

अकोमुनलु, श्री (1996); कंप्यूटर के प्रति विद्यार्थियों का दृष्टिकोण।

एसैन, ए. (2002); अनुदेशात्मक सामग्री को बनाने हेतु सेवापूर्व अध्यापकों का तकनीकी उपयोग।

चंद्रा, कुमारी (1990); दूरदर्शन के कार्यक्रमों के प्रति किशोर छात्र-छात्राओं एवं उनके माता-पिता के दृष्टिकोण का अध्ययन।

लेयर, डी. (1997); तकनीकी नवाचारों की कुंजी।

लीक (1997); अध्यापक हेतु बढ़ा हुआ अधिगम।

एम.सी. कैरॉन, एम. एंड क्रेन्स, बी.टी. (2000); प्रारंभिक विद्यालयी अध्यापकों की तकनीकी प्रशिक्षण आवश्यकताओं का मूल्यांकन करना।

पाठ्यचर्या, बी.टी.सी. (2010); भविष्य निर्माता शिक्षक की समझ। बी.टी.सी. पाठ्यचर्या 2010 उत्तराखण्ड।

सूचना तकनीकी शिक्षा का जर्नल (2003); प्रारंभिक विद्यालयी शिक्षकों द्वारा कंप्यूटर तकनीकी जागरुकता।

स्पास्टिकस सोसाइटी, कर्नाटक (2004); विशिष्ट अधिगम विकलांगताओं वाले बच्चों पर कंप्यूटर सहायक अधिगम का प्रभाव

शोध सार, डायट अल्मोड़ा (2006-07); दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में विकसित एवं प्रकाशित पुस्तकों का शिक्षकों एवं शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रभाव का अध्ययन।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 19, अंक 1, अप्रैल 2012

शोध टिप्पणी/संवाद

पूर्व-प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास पर अभिभावकीय आकांक्षा के प्रभाव का अध्ययन

विभा निगम* एवं **शालिनी दीक्षित****

बालक प्रकृति की श्रेष्ठतम कृति, अनमोल देन तथा सबसे निर्दोष कृति है। वह सहज है, सरल है, उस पर न कोई छाया है और न ही किसी पूर्वाग्रह की कालिमा है, कोरी स्लेट की तरह वह निर्मल है जिस पर कुछ भी लिखा जा सकता है। मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में पूर्व बाल्यकाल, मानव जीवन की प्रारम्भिक अवस्था है जिसमें व्यक्ति की समस्त शारीरिक एवम् मानसिक क्षमताओं का अविर्भाव, प्रस्फुटन और विकास होता है। यह विकास काल ही बालक के भावी जीवन की पृष्ठभूमि तैयार करता है। आज का अबोध और कोमल बालक कल समाज और राष्ट्र की बागड़ोर अपने हाथों में सम्भालता है। बच्चों के लिए सन्दर्भित वर्तमान शिक्षा आयोग (1964-66) के प्रतिवेदन में स्पष्ट कहा गया कि ''बच्चे के शारीरिक, भावगत और बौद्धिक विकास की दृष्टि से प्रारम्भिक 3 से 10 साल तक के वर्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं। यह भी देखा गया है कि जो बच्चे पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन हेतु जाते हैं वे प्राथमिक स्तर पर अच्छी प्रगति करते हैं।'' इण्डियन एसोसिएशन फॉर प्री स्कूल द्वारा अक्टूबर 1972 में स्वामीनाथन ने बच्चे के विकास हेतु स्पष्ट किया कि 0 से 3 वर्ष की आयु, स्वास्थ्य तथा पोषण की दृष्टि से तथा 3 से 6 वर्ष की आयु समूह संज्ञानात्मक विकास की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं। संयुक्त राष्ट्र महासंघ ने वर्ष 1979 को ''अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष'' घोषित किया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में पूर्व बाल्यकाल सुरक्षा और शिक्षा (Early Childhood Care & Education) की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा इस कार्यक्रम को महिला विकास एवम् प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु सहायक सेवा के रूप में प्राथमिकता दी गयी। अत: बच्चों के लिए

* दयालबाग एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट (डीम्ड विश्वविद्यालय) दयालबाग, आगरा
** जी.आई.सी.टी. कालेज, ग्वालियर

संदर्भित वर्तमान योजनाएँ उनके भविष्य का निर्माण करती हैं।

संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त

संज्ञानात्मक प्रक्रिया के विकास के सम्बन्ध में प्रमुखत: दो सिद्धान्त प्रचलित हैं– साहचर्यवादी सिद्धान्त तथा विकासात्मक सिद्धान्त ।

(अ) साहचर्यवादी सिद्धान्त

इसके अनुसार बच्चे के ज्ञान का निर्माण विभिन्न अनुभवों के साहचर्य द्वारा होता है अर्थात बच्चे के अनुभव में जितने तथ्य आते रहते हैं, वे सब एक साथ सयुंक्त हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप बच्चे के अन्दर व्यापक ज्ञान का भंडार निर्मित होता है, उसे ही संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के नाम से सम्बोधित किया गया है।

(ब) विकासात्मक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार बच्चे के अन्दर कुछ जन्मजात क्षमताएँ पायी जाती है जिनकी सहायता से वह विकासक्रम में उद्दीपक जगत से सम्बन्धित ज्ञान अर्जित करता है। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में बच्चे द्वारा अर्जित ज्ञान की संरचना में परिवर्तन एवम् परिमार्जन होता है। संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रमुख रूप से तीन सिद्धान्त समाहित हैं–

1. प्याजे का संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त
2. ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त
3. आसुबेल का संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त

यद्यपि उक्त तीनों ही सिद्धान्त विभिन्न परिदृश्यों को समाहित करते हैं, किन्तु तीनों ही यह व्याख्या करते हैं कि बालक अथवा व्यक्ति कैसे सीखता है? तथा उसका संज्ञानात्मक विकास कैसे होता है?

प्याजे का संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त

प्याजे ने संपूर्ण संज्ञानात्मक विकास को चार प्रमुख अवस्थाओं में विभाजित किया है। यथा–

1. संवेदी पेशीय अवस्था (Sensory Motor Stage) (जन्म से दो वर्ष तक)
2. पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (Pre Operational Stage) (2 से 6 वर्ष तक)
3. स्थूल संक्रियात्मक अवस्था (Concrete Operational Stage) (7 से 11 वर्ष तक)

4. औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था (Formal Operational Stage) (11 से 15 वर्ष तक)

ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त

ब्रूनर ने भी प्याजे की भाँति संज्ञानात्मक विकास के सन्दर्भों में तीन अवस्थायें स्पष्ट की हैं। ये हैं-

1. संक्रियात्मक अवस्था (Enactive Stage)
2. मूर्त अवस्था (Iconic Stage)
3. प्रतीकात्मक अवस्था (Symbolic Stage)

आसुबेल का संज्ञानात्मक सिद्धान्त (1968)

आसुबेल (1968) द्वारा प्रस्तुत संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त, प्याजे (1952) द्वारा प्रस्तुत संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त से भिन्न चिन्तन करता है। आसुबेल प्राथमिक रूप से संज्ञानात्मक विकास का सम्बन्ध सार्थक शाब्दिक अनुदेशन से करता है। इस अवस्था में उनको जितना अधिक निर्देशन तथा खोज के अवसर दिये जायेंगे, बालक का उतना ही उत्तम संज्ञानात्मक विकास होता है।

सारांशत: वर्तमान में हमें उक्त सन्दर्भ में ही, बुद्धि, मानसिक-मन्दन तथा संज्ञानात्मक विकास को समझना होगा। संज्ञानात्मक विकास जो कि निर्मित करता है – चिन्तन प्रक्रिया जिसमें समाहित है, स्मरण, समस्या-समाधान, एवम् निर्णय लेना। जिसका प्रतिफल है ज्ञान, यह बाल्यावस्था (Childhood) से प्रारम्भ होकर किशोरावस्था से होता हुआ प्रौढ़ अवस्था तक पहुँचता है, के प्रारम्भ स्तरीय निर्धारक घटकों एवम् प्रभावित करने वाले कारकों का गहन अध्ययन करना अवश्यम्भावी है।

अत: बालकों के महत्व को पहचानना एवं उन्हें इस प्रकार तैयार करना कि न केवल राष्ट्र की नींव सुदृढ़ हो, अपितु उसके भविष्य का निर्माण करने में सहायक सिद्ध हो, तो यह आवश्यक हो जाता है कि पूर्व बाल्यावस्था को प्रभावित करने वाले विभिन्न वातावरणजनीय कतिपय कारकों के सन्दर्भ में शोध करके, बालकों के संज्ञानात्मक विकास के सन्दर्भ में सही दिशा एवं दशा का संज्ञान प्राप्त किया जाए। पुन: इक्कीसवीं सदी के वैश्वीकरण, उदारीकरण, सार्वजनीकरण के युग में संचार क्रांति के फलस्वरूप आये हुए बदलाव एवं अभिभावकों की सोच, उनकी महत्वकाक्षायें बालकों के संज्ञानात्मक विकास पर क्या प्रभाव डालती है, इसके परिसन्दर्भों में शोधार्थी

के सम्मुख कुछ यक्ष प्रश्न उपस्थित हुए। यथा–

1. पूर्व–प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक विकास पर अभिभावकीय आकांक्षाओं का क्या प्रभाव पड़ता है?
2. पूर्व–प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है? उक्त प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने हेतु ही इस शोध समस्या का चयन किया गया है।

समस्या कथन

पूर्व–प्राथमिक स्तर के बालक–बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास पर उनके अभिभावकों की अभिभावकीय आकांक्षा के प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन के उद्देश्य

1. पूर्व–प्राथमिक स्तर के बालक–बालिकाओं की आयु के परिप्रेक्ष्य में संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन करना।
2. पूर्व–प्राथमिक स्तर के बालक–बालिकाओं के यौन–भेद के अनुसार संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन करना।
3. पूर्व–प्राथमिक स्तर के बालक–बालिकाओं की आयु व यौन–भेद के सन्दर्भ में संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन करना।
4. पूर्व–प्राथमिक स्तर के बालक–बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास पर अभिभावकीय आकांक्षा के प्रभाव का अध्ययन करना।
5. पूर्व–प्राथमिक स्तर के बालक–बालिकाओं के यौन–भेद के अनुसार संज्ञानात्मक विकास पर अभिभावकीय आकांक्षा के प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएं

1. पूर्व–प्राथमिक स्तर के बालक–बालिकाओं का संज्ञानात्मक विकास विभिन्न आयु स्तरों पर समान होता है।
2. पूर्व–प्राथमिक स्तर के बालक–बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास में समानता होती है।
3. पूर्व–प्राथमिक स्तर के बालक–बालिकाओं का संज्ञानात्मक विकास उनकी आयु व यौन–भेद से संयुक्त रूप में भी अप्रभावित रहता है।
4. पूर्व–प्राथमिक स्तर के बालक–बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास पर अभिभावकीय

आकाक्षांओं का सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

5. पूर्व-प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं का यौन-भेद के अनुसार संज्ञानात्मक विकास अभिभावकीय आकांक्षा से अप्रभावित होता है।

अध्ययन का परिसीमांकन

1. अध्ययन में उन्हीं आगरा नगर के पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों को सम्मिलित किया गया, जो किसी राज्य अथवा केन्द्रीय शैक्षिक बोर्ड यथा उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद्, केन्द्रीय शिक्षा बोर्ड, आई.सी.एस.ई. शिक्षा बोर्ड से मान्यता प्राप्त थे।
2. शोध अध्ययन उन्हीं पूर्व-प्राथमिक स्तर के विद्यालयों तक सीमित रखा गया जिनकी पूर्व प्राथमिक कक्षाओं की शैक्षणिक फीस 10,000/- अथवा उससे कम वार्षिक रूप में नियत थी।
3. शोध अध्ययन पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत 3-5 वर्ष तक के आयु वर्ग के विद्यार्थियों तक सीमित रखा गया।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि के अन्तर्गत तुलनात्मक विधि (Comparative Method) का प्रयोग किया गया ।

न्यादर्श

पूर्व प्राथमिक स्तर के 25 विद्यालयों के 1000 बालक-बालिकाओं का चयन उनके संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन के लिए किया गया एवम् इन्हीं बालक-बालिकाओं के 1000 अभिभावकों का चयन अभिभावकीय आकांक्षा के अध्ययन हेतु किया गया।

उपकरण

शोध के सन्दर्भ में सम्बन्धित प्रदत्तों के संकलन हेतु पाण्डेय (1993) द्वारा निर्मित परीक्षण पाण्डेय कॉग्निटिव डेवलपमेन्ट टेस्ट फॉर प्री-स्कूलर्स (P.C.D.T.P) तथा स्वनिर्मित अभिभावकों की आकांक्षा मापनी का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकीय प्रविधियाँ

प्रस्तुत अध्ययन के सन्दर्भ में प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु वर्णनात्मक सांख्यिकीय प्रविधियों में मध्यमान एवम् मानक विचलन तथा निर्वचनात्मक सांख्यिकीय प्रविधियों में क्रान्तिक अनुपात का प्रयोग किया गया।

प्रदत्तों का प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण एवम् विवेचन

पूर्व-प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं की आयु के परिप्रेक्ष्य में संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन

इस उद्देश्य हेतु सर्वप्रथम प्रदत्त एकत्रित किये गये इसके उपरान्त पूर्व-प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं की आयु के परिप्रेक्ष्य में संज्ञानात्मक विकास के मध्यमान, प्रामाणिक विचलन, क्रान्तिक अनुपात व पी-मान ज्ञात किये गये, जिन्हें तालिका-1 में प्रस्तुत किया गया है :

तालिका-1

पूर्व-प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं की आयु के सन्दर्भ में संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमान, प्रामाणिक विचलन, क्रान्तिक अनुपात तथा पी-मान

आयु समूह	संज्ञानात्मक विकास			df	क्रान्तिक अनुपात	पी-मान
	बालक-बालिकाओं की संख्या	मध्यमान	प्रा.वि.मान			
3-4 वर्ष	415	103.92	22.21	799	4.66	< 0.01
4-5 वर्ष	385	112.45	28.95			

उपर्युक्त तालिका का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि पूर्व प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास में आयु के आधार पर 0.01 सार्थकता स्तर पर भी सार्थक अन्तर होता है। तालिका के पुर्णावलोकन से विदित होता है कि 4-5 वर्ष के बालक-बालिकाओं का संज्ञानात्मक विकास 3-4 वर्ष के बालक-बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास की अपेक्षा उच्च स्तर का होता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आयु का बालकों के संज्ञानात्मक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है तथा जैसे-जैसे बालकों की आयु में वृद्धि होती जाती है एवम् परिस्थितियों में कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं आता है, बालकों के संज्ञानात्मक विकास में भी वृद्धि होती जाती है एवम् एक निश्चित आयु सीमा आने पर इस वृद्धि में स्थिरता आ जाती है।

पूर्व-प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं के यौन-भेद अनुसार संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन

इस उद्देश्य हेतु सर्वप्रथम प्रदत्त एकत्रित किये गये इसके उपरान्त पूर्व-प्राथमिक स्तर के

बालक-बालिकाओं के यौन-भेद अनुसार संज्ञानात्मक विकास के मध्यमान, प्रमाणिक विचलन, क्रान्तिक अनुपात व पी-मान ज्ञात किए गए। जिन्हें तालिका-2 में प्रस्तुत किया गया है :

तालिका-2

पूर्व-प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं के यौन-भेद अनुसार संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान, प्रामाणिक विचलन, क्रान्तिक अनुपात तथा पी-मान

समूह (यौन-भेद के आधार पर)	संज्ञानात्मक विकास			df	क्रान्तिक अनुपात	पी-मान
	बालक-बालिकाओं की संख्या	मध्यमान	प्रा.वि.मान			
बालक	398	110.85	27.81	799	3.54	< 0.01
बालिकाएँ	402	104.20	25.37			

उपर्युक्त तालिका के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पूर्व-प्राथमिक स्तर के बालक एवम् बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास में सांख्यिकीय रूप से 99 प्रतिशत दशाओं में सार्थक अन्तर होता है अर्थात बालकों का संज्ञानात्मक विकास बालिकाओं की अपेक्षा उच्च स्तर का होता है। उक्त परिणामों से स्पष्ट है कि बालक एवम् बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास पर यौन-भेद का सार्थक प्रभाव पड़ता है। बालक एवम् बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास में परिलक्षित अन्तर के दो सम्भावित कारण हो सकते हैं यथा प्रथम बालक एवम् बालिकाओं में नैसर्गिक रूप से शारीरिक संरचना व मानसिक स्तर में भिन्नता का होना तथा द्वितीय सम्भावना, भारतीय परिवारों में बालक एवम् बालिकाओं के लालन-पालन एवम् पोषण आहार में सम्भावित अन्तर का होना।

पूर्व-प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं की आयु व यौन-भेद के सन्दर्भ में संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन

उपरोक्त उद्देश्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि पूर्व-प्राथमिक स्तर के बालक एवम् बालिकाओं का संज्ञानात्मक विकास आयु तथा यौन-भेद के सन्दर्भ में भिन्न होता है। अन्य शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि पूर्व-प्राथमिक स्तर के बालक एवम् बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास पर उनकी आयु तथा यौन-भेद का स्वतंत्र रूप से प्रभाव पड़ रहा है।

यहाँ पर पुन: प्रश्न उठता है कि क्या विभिन्न आयु स्तर पर बालक एवम् बालिकाएँ आपस में संज्ञानात्मक विकास में पर्याप्त अन्तर रखते हैं? इस प्रश्न के ऊपर में पूर्व-प्राथमिक स्तर के विभिन्न आयु वर्ग के बालक एवम् बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमानों का अन्त: एवम् अन्तर समूह के सन्दर्भों में तुलनात्मक अध्ययन किया गया। प्राप्त परिणामों को निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है :

तालिका-3

पूर्व-प्राथमिक स्तर के विभिन्न आयु वर्ग के बालक एवम् बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान, प्रामाणिक विचलन, क्रान्तिक अनुपात तथा पी-मान

यौन भेद / आयु समूह	बालक			बालिकाएँ			क्रान्तिक अनुपात	पी-मान
	संख्या	मध्यमान	प्रा.वि. मान	संख्या	मध्यमान	प्रा.वि. मान		
3-4 वर्ष	210	105.60	22.72	205	101.09	21.708	2.06	< 0.05
4-5 वर्ष	188	116.65	29.54	197	107.46	28.36	3.11	< 0.01
क्रान्तिक अनुपात		4.16			6.36			
पी-मान		< 0.01			< 0.01			

उपर्युक्त तालिका का गहनतापूर्वक अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत 3-4 वर्ष आयु वर्ग तथा 4-5 वर्ष आयु वर्ग के विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक विकास में यौन-भेद के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण अन्तर है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो रहा है कि दोनों ही आयुसंवर्गों में बालक, बालिकाओं की तुलना में संज्ञानात्मक विकास की दृष्टि से श्रेष्ठ पाये गये हैं। क्योंकि दोनों ही आयु वर्ग के अर्थात 3-4 वर्ष एवम् 4-5 वर्ष के बालक-बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमानों में निहित अन्तर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से क्रमश: 95% व 99% विश्वास स्तर पर सार्थक पाये गये हैं।

इसी प्रकार यदि बालक वर्ग के अन्तर्गत 3-4 वर्ष आयु वर्ग तथा 4-5 वर्ष आयु वर्ग एवम् बालिका वर्ग में 3-4 वर्ष आयु वर्ग तथा 4-5 वर्ष आयु वर्ग के संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमानों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो भी स्पष्ट हो रहा है कि दोनों ही वर्ग अर्थात बालक तथा बालिकाओं का संज्ञानात्मक विकास, उनकी आयु से प्रभावित हो रहा है, क्योंकि दोनों ही संवर्गों के आयु के परिप्रेक्ष्य में प्राप्त मध्यमानों में निहित अन्तर सांख्यिकी दृष्टिकोण से 99% विश्वास

स्तर पर सार्थक पाया गया है। उक्त परिणामों से स्पष्ट है कि पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों का संज्ञानात्मक विकास, उनकी आयु तथा यौन-भेद की अन्त:क्रिया से प्रभावित हो रहा है।

पूर्व-प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास पर अभिभावकीय आकांक्षा के प्रभाव का अध्ययन

प्रत्येक अभिभावक यद्यपि अपने पाल्यों के भावी जीवन के उत्थानार्थ उनके प्रति कुछ शैक्षिक एवम् व्यावसायिक आकांक्षाएँ सुनिश्चित कर लेते हैं एवम् तदनुरूप उनके लिए प्रारम्भिक स्तर पर विशिष्ट सुविधाएँ एवम् शैक्षिक अवसर प्रदान करने का प्रयास करते हैं, किन्तु कुछ अभिभावक ऐसे भी होते हैं जो अपने पाल्यों के प्रारम्भिक विकास की अवस्था में कोई भी आकांक्षा नहीं रखते हैं और न ही कुछ विशिष्ट व्यवस्था करते हैं, तो कुछ अभिभावक ऐसे भी होते हैं जो पाल्यों के भाग्य पर भरोसा करते हैं एवम् निश्चिन्त रहते हैं।

यहाँ पर यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि क्या अभिभावकों की अपने पाल्यों के प्रति संजोयी गयी आकांक्षाओं का प्रभाव, उनके संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करता है? इस परिप्रेक्ष्य में शोधार्थी ने अभिभावकों के पाल्यों के प्रति आकांक्षाओं का मापन स्वनिर्मित परीक्षण के माध्यम से किया तथा शोध हेतु चयनित समस्त अभिभावकगणों को दो समूहों यथा उच्च व निम्न आकांक्षी के रूप में वर्गीकृत किया। क्रमश: दो वर्गों में वर्गीकृत करने हेतु प्रथम एवम् तृतीय चतुर्थांश मानों

तालिका-4

उच्च व निम्न आकांक्षी अभिभावकों के पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत पाल्यों के संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान, प्रामाणिक विचलन, क्रान्तिक अनुपात तथा पी-मान

आकांक्षा के आधार पर अभिभावक समूह	संज्ञानात्मक विकास			क्रान्तिक अनुपात	पी-मान
	बालक-बालिकाओं की संख्या	मध्यमान	प्रा.वि. मान		
उच्च आकांक्षायी अभिभावक	205	111.67	27.60	1.12	> 0.05
निम्न आकांक्षायी अभिभावक	218	108.60	28.79		

(तालिका 4.2.3.2) की सहायता ली गईं, प्रथम चतुर्थांश मान अर्थात 74.00 से नीचे अंक पाने वाले अभिभावक निम्न आकांक्षी तथा तृतीय चतुर्थांश अर्थात 95.00 से ऊपर अंक पाने वाले अभिभावकों को उच्च आकांक्षी के रूप में चिन्हित कर वर्गीकृत किया गया। इन दोनों समूहों के पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत पाल्यों के संज्ञानात्मक विकास के तुलनात्मक अध्ययन के सन्दर्भ में प्राप्त विभिन्न सांख्यिकी गणनाएँ निम्न तालिका-4 में प्रस्तुत की गयी हैं

तालिका-4 से स्पष्ट है कि सम्पूर्ण 800 अभिभावकों के समूह में लगभग समान संख्या में उच्च व निम्न आकांक्षायी अभिभावक पाये गये हैं। उक्त उच्च व निम्न आकांक्षायी अभिभावक के पाल्यों के संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी मध्यमानों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट हो रहा है कि जो अभिभावक अपने पाल्यों के सन्दर्भ में उच्च आकांक्षाएँ संजोए हुए हैं, उनके पाल्यों का संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध यमान अपेक्षाकृत उच्च हैं, निम्न आकांक्षायी अभिभावकों के पाल्यों के संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी मध्यमान से प्राप्त परिणाम स्पष्ट कर रहे है कि अभिभावक आकांक्षाओं का प्रभाव बालकों के संज्ञानात्मक विकास पर पड़ता है, किन्तु दोनों समूहों के मध्यमानों में निहित अन्तर की सार्थकता का परीक्षण किया जाए तो स्पष्ट हो रहा है कि उच्च व निम्न आकांक्षायी अभिभावकों के पाल्यों के संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी मध्यमानों में निहित अन्तर संयोगवश उत्पन्न हुआ है। क्योंकि प्राप्त टी-मान (1.12) सांख्यिकी रूप से 422 स्वतंत्रांश के परिप्रेक्ष्य में 0.05 विश्वास स्तर पर असार्थक पाया गया हैं।

प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि अभिभावकों की पाल्यों के सन्दर्भ में संजोयी आकांक्षाएँ पाल्यों के संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित नहीं करती है। अन्य शब्दों में वे अभिभावक जो अपने पाल्यों के सन्दर्भ में उच्च आकांक्षा रखते हैं। तथा वे अभिभावक जो अपने पाल्यों के सन्दर्भ में निम्न आकांक्षाएँ रखते है दोनों ही समूहों के पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत पाल्यों के संज्ञानात्मक विकास में अन्तर नहीं होता है।

पूर्व-प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं के यौन-भेद के अनुसार संज्ञानात्मक विकास पर अभिभावकीय आकांक्षा के प्रभाव का अध्ययन

गत पृष्ठों पर प्रस्तुत परिणामों से स्पष्ट है कि उच्च व निम्न आकांक्षायी अभिभावकों के पाल्यों के संज्ञानात्मक विकास पर प्रभाव नहीं पड़ता है। परन्तु यहाँ पर प्रश्न उठता है कि क्या अभिभावकगण अपने लड़के-लड़कियों के प्रति भिन्न आकांक्षा रखते हैं? क्या यौन-भेद के परिसन्दर्भों में अभिभावकीय आकांक्षाएँ अपने पाल्यों (पुत्र-पुत्रियों) के संज्ञानात्मक विकास को भिन्न रूप में प्रभावित करती है? इन प्रश्नों के प्रति उत्तर के

तालिका-6

उच्च व निम्न आकांक्षी अभिभावकों के पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक तथा बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमान, प्रामाणिक विचलन, क्रान्तिक अनुपात तथा पी-मान

यौन भेद / अभिभावक समूह	बालक			बालिकाएँ			क्रान्तिक अनुपात	पी-मान
	सं.	मध्यमान	प्रा.वि. मान	सं.	मध्यमान	प्रा.वि. मान		
उच्च आकांक्षी	106	111.41	27.25	99	111.94	27.96	0.13	> 0.05
निम्न आकांक्षी	93	113.69	30.20	125	104.81	26.72	2.40	< 0.05
क्रान्तिक अनुपात		0.55			3.69			
पी-मान		> 0.05			< 0.05			

परिप्रेक्ष्य में प्राप्त परिणाम तालिका में प्रस्तुत किये गये हैं।

उपर्युक्त तालिका का सूक्ष्म अवलोकन करने पर स्पष्ट हो रहा है कि बालकों के कुल समूह 398 में से 106 बालक अर्थात 26% ऐसे हैं जिनके सन्दर्भ में उनके अभिभावक उच्च आकांक्षा रखते हैं जबकि बालिकाओं के कुल समूह 402 में 99 अर्थात (24%) बालिकाएँ ऐसी है जिनके अभिभावक उनके प्रति उच्च आकांक्षा संजोये हैं। इसी प्रकार कुल 398 बालक समूह में 93 अर्थात् (23%) बालक ऐसे है जिनके अभिभावक उनके सन्दर्भ में निम्न आकांक्षा संजोये हुए हैं। इसी प्रकार 402 बालिकाओं के कुल समूह में 125 अर्थात 31% बालिकाएँ ऐसी हैं जिनके प्रति अभिभावकगण निम्न आकांक्षाएँ रखते हैं।

पुन: तालिका से स्पष्ट है कि उच्च आकांक्षायी अभिभावकों के बालक-बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमान में लगभग समानता है तथा दोनों समूहों के मध्यमानों में निहित अन्तर 95% दशाओं से भी अधिक स्थितियों में असार्थक पाया गया है। स्पष्ट है कि उच्च आकांक्षी अभिभावक के पाल्य चाहे वे बालक हों अथवा बालिकाएँ उनके संज्ञानात्मक विकास में अन्तर नहीं होता है। यदि निम्न आकांक्षायी अभिभावकों से सम्बन्धित बालक-बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट हो रहा है कि बालक समूह, अपने प्रतिपक्षी समूह की तुलना में उच्च संज्ञानात्मक विकास से युक्त हैं। साथ ही दोनों समूहों के संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमानों में निहित अन्तर सांख्यिकी दृष्टिकोण से 95 प्रतिशत दशाओं में सार्थक पाया गया है।

इसी प्रकार यदि उच्च व निम्न आकांक्षी अभिभावकों के बालक समूह के संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमानों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो विदित हो रहा है कि उच्च आकांक्षी अभिभावकों के बालकों की तुलना में निम्न आकांक्षी अभिभावकों के बालकों का संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान अपेक्षाकृत उच्च पाया गया हैं। किन्तु दोनों समूहों के मध्यमानों में निहित अन्तर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से असार्थक पाया गया हैं। पुन: यदि उच्च व निम्न आकांक्षीय अभिभावकों की बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमानों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट हो रहा है कि उच्च आकांक्षीय अभिभावकों के वर्ग की बालिकाओं का संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान, निम्न आकांक्षीय अभिभावकों के वर्ग की बालिकाओं के मध्यमान की तुलना में उच्च है। साथ ही दोनों समूहों के संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी मध यमानों में निहित अन्तर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से 99% दशाओं में सार्थक पाया गया है।

उपर्युक्त प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि अभिभावकीय आकांक्षा उनके पाल्यों के संज्ञानात्मक विकास को समग्र रूप से प्रभावित नहीं करती है, किन्तु यदि उनके पाल्यों के यौन-भेद के सन्दर्भ में अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट हो रहा है कि अभिभावक आकांक्षा उनके पाल्यों के संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करती है। उच्च आकांक्षी अभिभावक वर्ग की बालिकाएँ तथा निम्न आकांक्षी अभिभावक वर्ग के बालक संज्ञानात्मक विकास में अपने प्रतिपक्षी समूह की तुलना में श्रेष्ठ पाये गये हैं।

निष्कर्ष

पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन में सम्मिलित कतिपय मनो-जैव सामाजिकचरों यथा-आयु, यौन-भेद, अभिभावकों का आकांक्षीय स्तर, के परिसन्दर्भों में तुलनात्मक अध्ययन करने पर पाया गया कि-

(i) पूर्व-प्राथमिक स्तर पर बालकों के संज्ञानात्मक विकास पर आयु का 99% दशाओं में सार्थक प्रभाव पड़ता है। आयु में वृद्धि होने पर संज्ञानात्मक विकास में भी वृद्धि परिलक्षित हुई, क्योंकि 3-4 वर्ष आयु वर्ग की तुलना में 4-5 वर्ष आयु वर्ग के विद्यार्थी संज्ञानात्मक विकास में उच्च पाये गये। अत: अध्ययन से सम्बन्धित शून्य परिकल्पना कि ''पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत 3-4 वर्ष व 4-5 वर्ष आयु वर्ग के विद्यार्थियों का संज्ञानात्मक विकास समान होता है'' को अस्वीकृत किया गया। परिणामस्वरूप कहा जा सकता है कि **बाल्यावस्था में आयु में वृद्धि होने पर संज्ञानात्मक विकास में वृद्धि होती हैं।**

(ii) संज्ञानात्मक विकास में यौन-भेद का महत्वपूर्ण प्रभाव परिलक्षित हुआ। बालक, बालिकाओं की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक श्रेष्ठ पाये गये, क्योंकि बालकों का संज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान, बालिकाओं की तुलना में अधिक पाया गया। साथ ही दोनों समूहों के मध्यमानों में निहित अन्तर सांख्यिकी रूप से 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक पाया गया। अत: अध्ययन से संबंधित शून्य परिकल्पना कि ''पूर्व-प्राथमिक स्तर पर बालक-बालिकाएँ संज्ञानात्मक विकास में समान होते हैं'' को अस्वीकृत किया जाता है। परिणामस्वरूप यह कहा जा सकता है कि **99% दशाओं में 3-5 वर्ष की आयु अवस्था में बालक, बालिकाओं की तुलना में संज्ञानात्मक विकास में उच्च होते हैं। केवल 1% दशा में बालिकाएँ, बालकों की तुलना में संज्ञानात्मक विकास में उच्च होती हैं।**

(iii) पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक-विकास पर आयु व यौन-भेद का अन्यान्याश्रित प्रभाव पर पड़ता है। बालक तथा बालिका, दोनों ही संवर्गों में आयु का सार्थक प्रभाव परिलक्षित हुआ। आयु में बड़े बालक तथा बालिकाएँ अर्थात् 4-5 वर्ष आयु वर्ग के बालक-बालिकाएँ अपने से छोटी आयु अर्थात् 3-4 वर्ष की आयु वर्ग के बालक-बालिकाओं की तुलना में संज्ञानात्मक विकास में उच्च पाये गये। इसी प्रकार 3-4 वर्ष तथा 4-5 वर्ष के आयु संवर्ग पर बालक-बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास में महत्वपूर्ण अन्तर पाया गया। अत: अध्ययन से सम्बन्धित परिकल्पना कि ''पूर्व-प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों का संज्ञानात्मक विकास, आयु व यौन-भेद के सम्मिलित प्रभाव से अप्रभावित रहता है'' को 99% दशाओं में अस्वीकृत किया गया। परिणामत: कहा जा सकता है कि **प्रत्येक आयु स्तर पर यौन-भेद प्रभावी रहता है तथा दोनों ही संवर्गों यथा बालक-बालिकाओं की आयु में वृद्धि होने पर, उनके संज्ञानात्मक विकास में भी वृद्धि होती है।**

(iii) पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक तथा बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास पर उनके अभिभावकों के आकांक्षा स्तर के सन्दर्भ में जो अभिभावक उच्च आकांक्षाएँ रखते हैं, उनके बालक तथा बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास में सांख्यिकी रूप से महत्वपूर्ण भिन्नता परिलक्षित नहीं हुई। जबकि निम्न आकांक्षा से युक्त अभिभावकों के बालक, बालिकाओं की तुलना में संज्ञानात्मक विकास में उच्च पाये गये। स्पष्ट है कि अभिभावकों का आकांक्षा स्तर, विद्यार्थियों के यौन-भेदानुसार उनके संज्ञानात्मक विकास को भिन्न रूप में प्रभावित करता है। अत: अध्ययन से सम्बन्धित परिकल्पना

कि ''पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक तथा बालिकाओं का संज्ञानात्मक विकास उनके अभिभावकों के आकांक्षा स्तर से मुक्त रहता है'' को आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है। सारांशत: कहा जा सकता है कि **उच्च आकांक्षा स्तर से युक्त अभिभावकों के बालक तथा बलिकाओं के संज्ञानात्मक विकास की दृष्टि से समान होते हैं। जबकि निम्न आकांक्षा से युक्त अभिभावकों के बालक-बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास में भिन्नता होती है तथा बालक बलिकाओं की तुलना में संज्ञानात्मक विकास में उच्च पाये गये हैं।** साथ ही प्राप्त परिणाम यह भी स्पष्ट करते हैं कि उच्च एवम् निम्न आकांक्षा स्तर से युक्त अभिभावकों के बालकों के संज्ञानात्मक विकास में समानता होती है। जबकि बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास में महत्वपूर्ण भिन्नता पायी जाती है। उच्च आकांक्षी अभिभावकों की बालिकाएँ, निम्न आकांक्षी अभिभावकों की बालिकाओं की तुलना में संज्ञानात्मक विकास में श्रेष्ठत्तर पायी गयी हैं।

शैक्षिक निहितार्थ

प्राप्त परिणाम इंगित कर रहे हैं कि पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक विकास में आयु तथा यौन-भेद के परिसन्दर्भों में अन्तर होने के साथ-साथ अभिभावकों के आकांक्षा स्तर का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इन प्रभावों को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि-

शैशवावस्था में विशेषकर 3-5 वर्ष की आयु पर बालक-बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास को दृष्टिगत रखते हुये कक्षा में श्रेष्ठ शैक्षिक अनुभव प्रदान करने चाहिये। साथ ही साथ इस अवस्था में कक्षा-शिक्षण विधियों के रूप में क्रिया-प्रधान शिक्षण विधियों को अपनाना चाहिये एवम् उनका क्रियान्वयन करना चाहिये। इन सन्दर्भों में प्याजे द्वारा प्रस्तुत संज्ञानात्मक विकास के पूर्व संक्रियात्मक अवस्था व उसकी विशेषताओं को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिये। अधिगम अनुभवों के रूप में इस आयु अवस्था में बालक, बालिकाओं को आकृतियों (shapes), स्थान (space), छाँटना (sort) एवम् समतुल्य (Match) करना, रंगों, आकृति (shapes), आकार (size) के आधार पर वर्गीकरण करना, विभिन्न वस्तुओं को रखकर वस्तु विशेष को छाँटना एवम् पूछना कि इसमें कौन सी वस्तु नहीं थी। वस्तुओं की संरचना का ज्ञान विभिन्न आकृतियों के कार्डों के माध्यम से प्रदत्त करना चाहिए ।

आयु बढ़ने के साथ-साथ प्रयास एवम् त्रुटि के माध्यम से अधिगम अनुभव प्रदान न कर थोड़ा-थोड़ा तर्क का सहारा लेना चाहिए। साथ ही इस अवस्था पर

बालक-बालिकाओं में वर्गीकरण, ध्यान, अवधान-संकेन्द्रीकरण, स्मृति विकास तथा संवेदी अंगों के अधिकाधिक प्रयोग पर अधिक बल देना चाहिये। शिक्षण-विधियों के रूप में अनुकरण (imitation) तथा प्रतिरूप प्रस्तुतीकरण (Modeling) का सहारा लेना चाहिए। यद्यपि अभिभावक आकांक्षा का प्रभाव, बालक-बालिकाओं के संज्ञानात्मक विकास पर बहुत कम पड़ता है, किन्तु यह प्रभाव सांख्यिकीय रूप में सार्थक पाया गया है। अतः सावधानीपूर्ण कदम उठाते हुये अभिभावकों को चाहिये कि वे इस आयु स्तर अर्थात् 3-5 वर्ष की आयु अवस्था पर अपने पाल्यों के सन्दर्भ में अधिक उत्साही अथवा आकांक्षी न हों। साथ ही उन्हें पर्याप्त संवेदनशील होना चाहिये, किन्तु इतना अधिक संवेदनशील भी नहीं होना चाहिये कि इसका प्रभाव बच्चों की संज्ञानात्मक विकास पर नकारात्मक रूप में पड़ने लगे।

अभिभावकगणों को चाहिये कि जब वे अपने पाल्यों को अध्ययन हेतु किसी विद्यालय में प्रवेश दिलाना चाहते हैं तो उस विद्यालय के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। उस विद्यालय भवन की स्वच्छता, साज-सज्जा व्यवस्था, उस विद्यालय में अध्यापन कार्य करने वाले शिक्षकों की शैक्षणिक, पारिवारिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, कक्षा शिक्षण के सन्दर्भ में अपनायी जाने वाली प्रक्रियाओं, विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास के सम्बन्ध में अपनायी जाने वाली पाठ्य सहगामी क्रियाओं तथा अध्यापन के निमित्त निर्धारित पाठ्यचर्या के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने तथा आश्वस्त होने के उपरान्त ही विद्यालय में बच्चे को प्रवेश दिलाने का निर्णय लें।

विद्यालय संचालकों एवम् प्रशासनिक व्यक्तियों को चाहिए वे अपने विद्यालय के भौतिक संरचना, साफ सफाई, प्रफुल्लित वातावरण, कक्षा शिक्षण प्रक्रिया, शिक्षकों की शैक्षणिक योग्यता, उनके व्यावहार, उनके पारिवारिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को भी ध्यान में रखें, तथा विद्यालय की उचित शैक्षिक-वातावरण को बनाये रखने का प्रयास करना चाहिए।

राज्य सरकार का भी यह दायित्व है कि वह प्रादेशिक स्तर पर श्रेष्ठ वातावरण एवम् अध्ययन-अध्यापन से युक्त विद्यालयों की स्थापना करे। क्योंकि बालक ही राष्ट्र की निधि हैं। यदि बालकों का संज्ञानात्मक विकास श्रेष्ठ होगा तो राष्ट्र की प्रगति एवम् विकास भी श्रेष्ठतर बनना अवश्यम्भावी है। अतः उनके पोषण के लिए श्रेष्ठ शैक्षिक व्यवस्थाओं के लिए गम्भीर प्रयास करने चाहिए तथा श्रेष्ठ भौतिक एवम् शैक्षिक प्रक्रिया से युक्त विद्यालयों की कोटिकरण कर उन्हें पुरस्कृत करना चाहिए तथा अभिभावकों के सूचनार्थ प्रकाशन की व्यवस्था करनी चाहिए।

यद्यपि वर्तमान समय में केन्द्रीय सरकार उच्च शिक्षा के उच्चीकरण पर विशेष ध्यान दे रही है, किन्तु पूर्व-प्राथमिक तथा प्राथमिक स्तर पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। तभी उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हमारे प्रयास अधिक सफल होगें।

संदर्भ ग्रंथ

बेस्ट, जे.डब्ल्यू. एंड जेम्स वी. कैन. (2006) *रिसर्च इन एजुकेशन,* नाइंथ एडीशन, पब्लिशड डोरलिंग काइंडरस्ले (इंडिया) प्रा. लि. लाइसेंस आफ पियरसन एजुकेशन इन साउथ एशिया

बुच, एम. बी. (सम्पादित) (1983-89), *फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन* (वॉल्यूम 1 व 2), नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी.।

चेरियन, वी.आई. (1994) *रिलेशन बिटवीन पेरेन्टल असपिरेशन एंड ऐकेडमिक अचीवमेंट आफ जोसा चिल्ड्रन फ्रम ब्रोकन एंड इन्टेक्ट फैमिलीज,* फैक्लटी आफ एजुकेशन, यूनिवर्सिटी आफ ट्रांसकी, इन साइको रिप. जून 74, पीपी 835-40

क्रिस्टोफर, स्पेरा; केथर्न आर. वेंटेल एंड हॉली, सी. मैटो, (2008), *अ स्टडी अफ द पेरेन्टल एसपिरेशन फार देयर चिल्ड्रन एजुकेशनल अटेनमेंट इन रिलेशन टू ऐथेनिसिटी, पेरेन्टल एजुकेशन, चिल्ड्रेन ऐकेडेमिक परफॉरमेंस एंड पेरेन्टल पर्सेपसन आफ द क्वालिटी एंड क्लाइमेट आफ देयर चिल्ड्रन्स स्कूल* पब्लिशड ऑनलाइन; 29 जुलाई

ऐलिजाबेथ आर., मेर, एच.बी. एलेन, एम.एस., एंड जैकेलिन, बी. (1999), *अर्ली कॉगनीटिव डवलपमेंट एंड पेरेन्टल एजुकेशन,* न्यूयार्क : जॉन विले एंड संस, लिमिटेड

गैरेट, एच.ई. (1961) *स्टेटिक्स इन साइकोलॉजी एंड एजुकेशन,* बम्बई: अलाइड पैसिफिक प्रा. लि. पृ. 520

कपिल, एच.के. (1986), *सांख्यिकीय के मूल तत्व,* आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।

कपिल, एच.के. (2001), *अनुसंधान विधियाँ (व्यवहारपरक विज्ञानों में),* आगरा : एच. पी. भार्गव बुक हाऊस।

कोली, लक्ष्मीनारायण (2003), *रिसर्च मैथडोलॉजी,* आगरा : वाई. के. पब्लिषर्स।

पामेला ई. डेयर्स-कीन (2005), *दि इन्फ्लूएंस आफ पेरेन्ट एजुकेशन एंड फेमिली इन्कम आन चाइल्ड अचीवमेंट : द इन्डायरेक्ट रोल आफ पेरेन्टल एक्सपैक्टेशन एंड द होम इन्वायरमेंट,* जू. आफ फेमिली साइकोलॉजी, 19 (2), पी.पी. 294-304

टेलर, डेबोर ई. (2008) *दि इन्फ्लूइंस आफ क्लाइमेट आन स्टूडेंट अचीवमेंट इन एलिमेंट्री स्कूल्स,* पब्लिशड एड. पी-एच.डी. थिसिस, दि जोर्ज वाशिंगटन यूनिवर्सिटी, रेफ. इन डीएआई, 69 (2), अगस्त, पीपी 466

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 19, अंक 1, अप्रैल 2012

शोध संवाद टिप्पणी

विषय वर्ग एवं यौन-भिन्नता के परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थियों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन

सुनीता मिश्रा* एवं **निधि सोलंकी****

प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य विषय वर्ग (विज्ञान एवं कला वर्ग) तथा यौन भिन्नता के परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थियों के मूल्यों का अध्ययन करना है । शोध अध्ययन हेतु प्रतिदर्श के रूप में 200 छात्र-छात्राओं (विज्ञान एवं कला वर्ग) का चयन आकस्मिक प्रतिदर्श द्वारा किया गया। विद्यार्थियों के मूल्य मापन हेतु जी.पी. शैरी और आर.पी. वर्मा द्वारा निर्मित व्यक्तिगत मूल्य प्रश्नावली (PVQ 1973) का प्रयोग किया गया। प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण के सन्दर्भ में मध्यमान, मानक विचलन तथा क्रान्तिक अनुपात प्रविधियों का प्रयोग किया गया। प्रदत्तों के विश्लेषणोपरान्त विज्ञान व कला वर्ग के विद्यार्थियों के धार्मिक, शक्तिवादी, परिवार-प्रतिष्ठा एवं स्वास्थ्य मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। सामाजिक, प्रजातांत्रिक एवं ज्ञानात्मक मूल्य विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों में अधिक पाये गये, जबकि कला वर्ग के विद्यार्थियों में आर्थिक एवं सुखवादी मूल्यों में (0.01) स्तर पर सार्थक अन्तर पाया गया। इसी प्रकार यौन भिन्नता के परिप्रेक्ष्य में छात्र-छात्राओं के सामाजिक, प्रजातांत्रिक, सौन्दर्यात्मक, ज्ञानात्मक, शक्तिवादी, परिवार प्रतिष्ठा एवं स्वास्थ्य मूल्यो में कोई अन्तर परिलक्षित नहीं हुआ, जबकि छात्रों में धार्मिक मूल्य और छात्राओं में आर्थिक मूल्यों में (0.05) स्तर पर सार्थक अंतर दृष्टिगोचर होता है ।

व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र विकास में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण है। शिक्षा व्यक्ति के जीवन में ऐसा परिवर्तन लाती है, जिससे वह निरन्तर उत्कृष्टता की ओर अग्रसर होता है। शिक्षा विकास के प्रमुख पहलुओं - शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, संवेगात्मक, सामाजिक एवं नैतिक विकास के बीच सामंजस्य लाती है।

---

* प्रवक्ता, शिक्षा विभाग, कुँ आर.सी. महिला महाविद्यालय, मैनपुरी।
** प्रवक्ता, शिक्षा विभाग, कुँ आर.सी. महिला महाविद्यालय, मैनपुरी।

हरबार्ट के अनुसार– ''शिक्षा का कार्य उत्तम नैतिक चरित्र का विकास करना है''। मूल्य का तात्पर्य उन संकल्पनाओं से है जो मानवीय व्यवहारों को अनुबन्धित करते हैं। शिक्षा मूल्यों का विकास करने में सहायक है। समाज की उन्नति में सदस्यों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। मूल्य उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने में सहायता करते हैं एवं समाज की संस्कृति और संस्कार निखारने में मूल्य उपयोगी सिद्ध होते हैं। सत्य, निष्ठा, परोपकार, सेवा भावना एवं कर्तव्य परायणता आदि गुणों समाज को एकजुट रखने में सहायक होते हैं ।

शिक्षा के शब्दकोश में गुड ने मूल्य की चारित्रिक विशेषता बताते हुए इसे मनोवैज्ञानिक और सामाजिक सौन्दर्य बोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना है । जॉन डीवी ने मूल्यों को परिवर्तनशील माना है। डिक्शनरी ऑफ एजूकेशन गुड के अनुसार ''मूल्य एक ऐसी विशेषता है जिसे मनोविज्ञान में उत्कृष्ट एवं महत्वपूर्ण समझा जाता है तथा यह उस व्यक्ति में अन्तर्निहित रहते हैं जो उसके विश्वास के अनुसार सुरक्षा व नैतिक सहायता प्रदान करते हैं। मानव मूल्य एक ऐसी आचार संहिता या सद्गुण समूह हैं जिसे मानव अपने संस्कारों तथा पर्यावरण के माध्यम से अपनाकर अपने निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन शैली का निर्माण करता है। मानव मूल्यों में आचार, विचार, विश्वास, मनोवृत्ति, निष्ठा आदि गुण समाहित होते हैं ।

विभिन्न विचारकों ने मूल्यों का वर्गीकरण तीन प्रकार से किया है–

क. दार्शनिक
ख. मनोवैज्ञानिक
ग. सामाजिक

स्प्रेंगर ने मूल्यों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है –

क. सैद्धांतिक मूल्य
ख. आर्थिक मूल्य
ग. सामाजिक मूल्य
घ. सौन्दर्यात्मक मूल्य
ङ. राजनीतिक मूल्य
च. धार्मिक मूल्य

शिक्षा से हमें यह अपेक्षा करनी चाहिए कि शिक्षा बालक के अन्दर शाश्वत एवं सामाजिक

मूल्यों के प्रति आस्था की भावना उत्पन्न करे, जिससे बालक उसके अनुरूप अपने व्यवहार को संचालित करें। विद्यालय शिक्षा का एक सशक्त साधन है। इसकी समस्त गतिविधियाँ बालक में मूल्यों का विकास करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। विद्यालय रूपी वातावरण में बालक मूल्यों को ग्रहण करने में समर्थ होते हैं ।

अध्ययन की आवश्यकता – भारत अपनी कला, संस्कृति एवं दर्शन आदि की गौरवशाली परम्पराओं पर सदैव गर्व अनुभव करता है परन्तु आज पारस्परिक अविश्वास के कारण हमारी प्राचीन परम्परा एवं मूल्य धूमिल हो रहे हैं। आधुनकिता की भ्रामक अवधारणा, अस्तित्वादी जीवन, नास्तिकता, पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण, तर्क प्रधान चिंतन आदि के कारण पुरानी परम्पराओं एवं मूल्यों में बढ़ता अविश्वास हमारे प्राचीन मूल्यों को विघटित कर रहे हैं ।

आज भारतीय संस्कृति ऐसे दौर से गुजर रही है, जहाँ हमारे युवा वैश्वीकरण के नाम पर पाश्चात्य संस्कृति के रंग में धुले हैं। वैश्वीकरण का अर्थ है विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास करना एवं वसुधैव कुटुम्बकम को समझना। महात्मा गाँधी (1937) ने 'इण्डियन एजूकेशन कॉन्फ्रेन्स' की बैठक बुलाकर शिक्षा के माध्यम से मानवीय मूल्यों पर जोर दिया। 15 अगस्त 1947 ई. में भारत का नया संविधान लागू किया गया, जिसमें भारतीय मूल्यों पर विचार करके लोकतंत्रीय मूल्यों के विकास को आवश्यक बताया गया। स्वतंत्र भारत में कई आयोगों व समितियों को गठित करके मूल्यपरक शिक्षा पर जोर दिया गया और इसके विकास के अनेक मार्ग बताये गये, जो इस प्रकार हैं–

1. डा. राधाकृष्णन आयोग (1948-49) – आयोग ने प्रतिवेदन में मत अंकित किया कि यद्यपि भारत धर्मनिरपेक्ष राज्य है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती है। इसका अभिप्राय धार्मिक कदृरता एवं संकीर्णता का निषेध करना है, न कि व्यक्तिगत धार्मिक स्वतंत्रता का।
2. माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) – शिक्षा के द्वारा विभिन्न मूल्यों की स्थापना पर बल दिया है ।
3. धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा समिति (1956) – डा. श्रीप्रकाश ने इस समिति द्वारा बालकों में मूल्यों की शिक्षा देने के लिए अनेक सुझाव दिये ।
4. शिक्षा आयोग (1964-66) - मूल्य शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव करते हुये शिक्षा आयोग ने मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका को स्पष्ट करते

हुये लिखा है ''विद्यालय में उपलब्ध भौतिक सुविधायें छात्रों को मूल्योन्मुख बनाने में विशेष भूमिका निभाती हैं। हम इस बात पर बल देना चाहेंगे कि विविध मूल्यों के प्रति जागरूक विद्यालय सम्पूर्ण पाठ्यक्रम एवं समस्त गतिविधियों को प्रभावित करें''।

मूल्यों के विकास के अभाव में मनुष्य चाहे जितने सुख-सुविधा के साधन जुटा लें, समृद्धि एवं वैभव अर्जित कर लें, परन्तु समाज में सुख एवं शान्ति कायम नहीं हो सकती। यही कारण है कि आज समाज में व्यभिचार, भ्रष्टाचार, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रीयता एवं रिश्वतखोरी बढ़ रही है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में मूल्य तिरोहित हो रहे हैं।

5. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद की एक संगोष्ठी (1970) में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता महसूस करते हुए विभिन्न मूल्यों को विकसित करने पर जोर दिया गया।

   मानवशास्त्री मूल्यों को सांस्कृतिक लक्षणों के रूप में स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि से संस्कृति और मूल्य अभिन्न होते हैं। कोई संस्कृति अपने मूल्यों से ही पहचानी जाती है। अत: शिक्षा द्वारा यह प्रयास किया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थियों में वांछित उच्चतम मूल्यों का विकास हो सके। अत: राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में इस बात पर चिन्ता की गई कि ''जीवन के लिए आवश्यक मूल्यों का ह्रास हो रहा है और मूल्यों से ही लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। अत: शिक्षा क्रम में ऐसे परिवर्तन की जरूरत है जिससे सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा सशक्त साधन बन सके।

6. शिमला (1982) में नैतिक शिक्षा पर उच्च स्तरीय परिचर्चा हुई। इसमें मूल्यपरक शिक्षा के बारे में महत्वपूर्ण सिफारिशें की गयीं।

हमें जीवन के मूल्यों की रक्षा करनी चाहिए। मूल्य ही व्यक्ति को मूल्यवान बनाते हुए अमूल्य बनाता है। इस संबंध में डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. डी.एन. जौहर ने ''नैतिकता एवं मानव मूल्यों के उन्नयन'' विषय पर आयोजित संगोष्ठी में कहा कि यदि हमें मूल्यों की रक्षा करनी है तो समाज के ऋण को चुकाना होगा। समाज की अवधारणा मूल्यों की बुनियाद पर टिकी है। छात्र-छात्राओं एवं शिक्षकों को नैतिक मानवीय मूल्यों को नहीं भूलना चाहिए। यह भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं।

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार मूल्यों का मानव जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है जिसके फलस्वरूप मानव के मन में अनेक प्रश्न उठते हैं कि 'क्या विज्ञान एवं कला वर्ग के विद्यार्थियों के मूल्यों में कोई अन्तर है' 'क्या छात्र एवं छात्राओं को उल्लिखित मूल्यों के संबंध में बोध है' इन सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत शोध कार्य किया गया है ।

अध्ययन के उद्देश्य : वर्तमान शोध के परिप्रेक्ष्य में जिन उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया गया है, वे निम्न हैं -

1. विज्ञान एवं कला वर्ग के विद्यार्थियों के विभिन्न मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना ।
2. छात्र-छात्राओं के विभिन्न मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना ।

परिकल्पनायें : प्रस्तुत शोध अध्ययन के निमित्त निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के संदर्भ में निम्न निराकरणीय परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया ।

1. विज्ञान एवं कला वर्ग के विद्यार्थियों के विभिन्न मूल्यों में कोई अंतर नहीं है।
2. छात्र एवं छात्राओं के विभिन्न मूल्यों में कोई अंतर नहीं है ।

प्रतिदर्श : एटा जिले में स्थित माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत 200 छात्र-छात्राओं का प्रतिदर्श आकस्मिक विधि से चयनित किया गया है। इन विद्यालयों के चयनित विद्यालयों एवं छात्र-छात्राओं की संख्या इस प्रकार है-

तालिका-1

चयनित विद्यालय एवं छात्र संख्या

	छात्र		छात्रायें		कुल संख्या
	विज्ञान	कला	विज्ञान	कला	
सरस्वती विद्या मन्दिर, माध्यमिक विद्यालय, एटा।	50				50
श्री गाँधी स्मारक इंटर कालेज, एटा		50			50
महारानी लक्ष्मीबाई कन्या इन्टर कालेज, एटा			50		50
राजकीय बालिका इंटर कालेज, एटा				50	50
कुल योग		100		100	200

तालिका–2

विषय वर्ग के अन्तर्गत विभिन्न मूल्यों से संबंधित मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात (C.R.) का विवरण

कला वर्ग की संख्या 100 विज्ञान वर्ग की संख्या 100		धार्मिक मूल्य	सामाजिक मूल्य	प्रजातांत्रिक मूल्य	सौन्दर्यात्मक मूल्य	आर्थिक मूल्य	ज्ञानात्मक मूल्य	सुखवादी मूल्य	शक्तिवादी मूल्य	प्रतिष्ठा मूल्य	स्वास्थ्य मूल्य
मध्यमान	समूह कला वर्ग	13.36	15.82	15.79	10.64	7.92	16.8	8.48	9.13	11.2	11.04
	विज्ञान वर्ग	13.32	13.34	14.8	12.00	9.88	15.00	9.7	9.12	12.07	10.7
मानक विचलन	कला वर्ग	3.20	2.81	2.51	2.53	3.12	2.83	2.80	2.19	3.19	2.31
	विज्ञान वर्ग	2.84	2.96	2.82	2.35	2.70	2.81	2.68	2.56	3.51	2.35
क्रान्तिक अनुपात		.09	6.08	2.62	3.93	4.75	4.52	3.15	.03	1.83	1.73
सार्थकता स्तर		0.0.5 सार्थक अन्तर नहीं है	0.01 सार्थक अन्तर है	0.01 सार्थक अन्तर है	0.01 सार्थक अन्तर है	0.01 सार्थक अन्तर है	0.01 सार्थक अन्तर है	0.01 सार्थक अन्तर है	0.5 सार्थक अन्तर नहीं है	0.5 सार्थक अन्तर नहीं है	0.5 सार्थक अन्तर नहीं है
परिकल्पना		स्वीकृत	अस्वीकृत	अस्वीकृत	अस्वीकृत	अस्वीकृत	अस्वीकृत	अस्वीकृत	अस्वीकृत	स्वीकृत	स्वीकृत

उपकरण : प्रस्तुत अध्ययन से संबंधित आँकड़ों (प्रदत्तों) के लिए डॉ. जी.पी. शैरी एवं आर.पी. वर्मा द्वारा निर्मित 'व्यक्तिगत मूल्य प्रश्नावली' (PVQ 1973) प्रयोग किया गया।

सांख्यिकीय विधियाँ : एकत्रित आँकड़ों (प्रदत्तों) का विश्लेषण करने के लिए मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात का प्रयोग किया गया ।

परिणाम

1. विज्ञान एवं कला वर्ग के विद्यार्थियों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यों का अध्ययन करने हेतु छात्र-छात्राओं के मूल्यों संबंधी प्राप्तांकों के मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी। प्राप्त परिणामों को तालिका-2 में दर्शाया गया है ।

उपर्युक्त तालिका-2 में प्रदर्शित परिणामों का गहनतापूर्वक अवलोकन करने से विदित होता कि विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों में सामाजिक, प्रजातांत्रिक एवं ज्ञानात्मक मूल्यों के प्राप्तांकों का मध्यमान, कला वर्ग के विद्यार्थियों के सामाजिक, प्रजातांत्रिक एवं ज्ञानात्मक मूल्यों के प्राप्तांकों के मध्यमान से अधिक है। उपर्युक्त दोनों समूहों के सामाजिक, प्रजातांत्रिक एवं सौन्दर्यात्मक मूल्यों में जो अन्तर परिलक्षित हो रहा है, वह सांख्यिकीय दृष्टिकोण से भी सार्थक है क्योंकि उपर्युक्त तालिका-2 में प्रदर्शित क्रान्तिक अनुपात (0.01) स्तर पर सार्थक है। इसी प्रकार कला वर्ग के विद्यार्थियों में सौन्दर्यात्मक, आर्थिक एवं सुखवादी मूल्यों के प्राप्तांकों का मध्यमान विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के सौन्दर्यात्मक, आर्थिक एवं सुखवादी मूल्यों के प्राप्तांकों के मध्यमान से अधिक है । उपर्युक्त दोनों समूहों के सौन्दर्यात्मक, आर्थिक एवं सुखवादी मूल्यों में जो अन्तर परिलक्षित हो रहा है वह सांख्यिकीय दृष्टिकोण से भी सार्थक है, क्योंकि उपर्युक्त तालिका में प्रदर्शित क्रान्तिक अनुपात (0.01) स्तर पर सार्थक है। विज्ञान एवं कला वर्ग के विद्यार्थियों के धार्मिक, शक्तिवादी, परिवार प्रतिष्ठा एवं स्वास्थ्य मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है।

2. छात्र-छात्राओं के परिप्रेक्ष्य में मूल्यों का अध्ययन करने हेतु विज्ञान एवं कला वर्ग के विद्यार्थियों के मूल्यों संबंधी प्राप्तांकों के मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी। प्राप्त परिणामों को तालिका-3 में दर्शाया गया है ।

निम्नलिखित तालिका-3 में प्रदर्शित परिणामों का गहनतापूर्वक अवलोकलन करने से विदित होता है कि छात्रों में धार्मिक मूल्यों के प्राप्तांकों का मध्यमान छात्राओं के धार्मिक मूल्यों के प्राप्तांकों के मध्यमान से अधिक है। उपर्युक्त दोनों समूहों के धार्मिक

तालिका–3

छात्र–छात्राओं के मूल्यों से संबंधित मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात (C.R.) का विवरण

छात्रों की संख्या 100 छात्राओं की संख्या 100		धार्मिक मूल्य	सामाजिक मूल्य	प्रजातांत्रिक मूल्य	सौन्दर्यात्मक मूल्य	आर्थिक मूल्य	ज्ञानात्मक मूल्य	सुखवादी मूल्य	शक्तिवादी मूल्य	प्रतिष्ठा मूल्य	स्वास्थ्य मूल्य
मध्यमान	समूह छात्र	13.84	14.30	15.29	11.00	8.5	16.16	9.12	9.19	11.78	11.8
	छात्रायें	12.82	14.94	15.08	11.52	9.4	15.5	8.56	9.1	11.86	10.5
मानक	छात्र	2.88	3.18	2.63	2.71	3.35	3.21	2.52	2.48	33.49	2.61
विचलन	छात्रायें	3.01	3.01	2.52	2.68	2.91	3.08	2.33	3.41	2.53	
क्रान्तिक अनुपात		2.42	1.46	0.53	1.41	2.09	1.52	0.40	0.26	0.16	1.59
सार्थकता स्तर स्तर		0.05 सार्थक अन्तर नहीं है	0.5 सार्थक अन्तर नही है	0.5 सार्थक अन्तर नही है	0.5 सार्थक अन्तर है	0.5 सार्थक अन्तर है	0.5 सार्थक अन्तर नहीं है	0.5 सार्थक अन्तर नहीं है	0.5 सार्थक अन्तर नहीं है	0.5 सार्थक अन्तर नहीं है	0.5 सार्थक अन्तर नहीं है

मूल्यों में जो अंतर परिलक्षित हो रहा है, वह सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक है, क्योंकि उपर्युक्त तालिका में प्रदर्शित क्रान्तिक अनुपात (0.05) स्तर पर सार्थक है। इसी प्रकार छात्राओं के आर्थिक मूल्य के प्राप्तांकों का मध्यमान छात्रों कें आर्थिक मूल्य के प्राप्तांकों के मध्यमान से अधिक है। उपर्युक्त दोनों समूहों के आर्थिक मूल्य में जो अन्तर दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक है, क्योंकि उपर्युक्त तालिका-3 में प्रदर्शित क्रान्तिक अनुपात (0.05) स्तर पर सार्थक है । उपर्युक्त तालिका में छात्र एवं छात्राओं में सामाजिक, प्रजातांत्रिक, सौन्दर्यात्मक, ज्ञानात्मक, सुखवादी, शक्तिवादी, परिवार प्रतिष्ठा एवं स्वास्थ्य मूल्य में कोई अन्तर परिलक्षित नहीं हो रहा है ।

विवेचना

वर्तमान शोध अध्ययन के अन्तर्गत विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों में सामाजिक, प्रजातांत्रिक एवं ज्ञानात्मक मूल्य अधिक पाये गये हैं। सम्भवत: इसका कारण वर्तमान युग का सामाजिक होना, विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं ज्ञान विकसित होना एवं सामाजिक बुद्धि का अधिक पाया जाना है ।

ये छात्र प्रजातांत्रिक सिद्धांतों (स्वतंत्रता, समानता, न्याय एवं भ्रातृत्व की भावना) के पक्षधर हैं। प्रस्तुत शोध परिणामों की पुष्टि भदौरिया, कामिनी एवं निगम, दीपशिखा (2008) द्वारा किये गये शोध परिणामों से भी हो रही है कि विज्ञान वर्ग के बालकों ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रजातांत्रिक, सामाजिक एवं ज्ञानात्मक मूल्यों को दिया, जिससे स्पष्ट है कि हमारे भावी राष्ट्र निर्माता सर्वसम्मति से सामाजिक परम्पराओं और रूढ़ियों के प्रति विद्रोही होकर स्वतंत्रता, समानता, अधिकार एवं न्याय के पक्षधर हैं।

प्रस्तुत शोध परिणाम की प्रामाणिकता कुमार, प्रदीप एवं सतसंगी नन्दिता (2010) के परिणामों से होती है कि सी.बी.एस.ई. बोर्ड की कक्षा 8 की विज्ञान की पुस्तक में भी व्यक्तिगत एवं सामाजिक मूल्य अधिक दिये गये, जबकि नैतिक मूल्य कम पाये गये। अत: विज्ञान की पुस्तक विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों में सामाजिक मूल्य का अधिक होना सिद्ध करती है। कला वर्ग के विद्यार्थियों में कला, साहित्य, संगीत के प्रति रुचि होना, प्रकृति के सौन्दर्य का उपासक होना, उनके सौन्दर्यात्मक एवं सुखवादी मूल्य को प्रदर्शित करता है। दोनों ही वर्गों के विद्यार्थियों में धार्मिक, शक्तिवादी परिवार-प्रतिष्ठा एवं स्वास्थ्य मूल्यों में कोई अन्तर दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

छात्र-छात्राओं के मध्य उनके मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर पाया कि छात्रों में छात्राओं की अपेक्षा धार्मिक मूल्यों की अधिकता पायी गयी। वर्तमान में छात्रों में

धार्मिक मूल्य का अधिक पाया जाना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है एवं उनकी भारतीय परम्परा के प्रति रुचि को व्यक्त करता है। इसके विपरीत छात्राओं में व्रत, पूजा एवं अनुष्ठान आदि के प्रति उदासीनता प्रत्यक्ष प्रमाणित करता है। (2009) के शोध परिणाम दर्शाते हैं कि बालकों में भी धार्मिक मूल्य अधिक पाये जाते हैं ।

यौन भिन्नता के परिप्रेक्ष में छात्राओं में आर्थिक मूल्य छात्रों की अपेक्षा अधिक पाये गये। अत: इससे स्पष्ट है कि छात्रायें भौतिकवादी युग में (धन) की महत्ता को समझते हुये वरीयता देती हैं जो उनकी प्रकृति के अनुकूल है। इसका प्रमुख कारण छात्राओं का मितव्ययी होना, आय–व्यय के मध्य संतुलन बनाये रखना, नारी के प्राकृतिक गुणों का प्रतीक है। कुमार, अनिल एवं सिंह सारनाथ (2008) के शोध परिणाम से स्पष्ट हो रहा है कि छात्राओं मे आर्थिक मूल्य का स्तर छात्रों की तुलना में अधिक पाया जाता है। लिंग भेदानुसार छात्राओं के सामाजिक, प्रजातांत्रिक, सौन्दर्यात्मक, ज्ञानात्मक, सुखवादी, शक्तिवादी, परिवार प्रतिष्ठा एवं स्वास्थ्य मूल्यों में अंतर न होना – यह परिलक्षित करता है कि छात्र एवं छात्रायें दोनों ही समूह इन मूल्यों में समानता रखते हैं ।

निष्कर्ष

1. विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों में सामाजिक, प्रजातांत्रिक तथा ज्ञानात्मक मूल्य कला वर्ग के विद्यार्थियों की अपेक्षाकृत अधिक पाये गये, जबकि कला वर्ग के विद्यार्थियों में सौन्दर्यात्मक, आर्थिक तथ सुखवादी मूल्य विज्ञान वर्ग की तुलना में अधिक पाये गये। धार्मिक, शक्तिवादी, परिवार प्रतिष्ठा एवं स्वास्थ्य मूल्यों में कोई अन्तर नहीं पाया गया ।
2. छात्रों में धार्मिक मूल्य छात्राओं की अपेक्षाकृत अधिक पाये गये जबकि छात्रायें आर्थिक मूल्य को अधिक वरीयता देती हैं। छात्र एवं छात्राओं में विविध मूल्यों यथा सामाजिक, प्रजातांत्रिक, परिवार प्रतिष्ठा एवं स्वास्थ्य मूल्य समान अनुपात में पाये गये ।

शैक्षिक महत्व

प्रस्तुत शोध अध्ययन से प्राप्त परिणाम माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों में विभिन्न मूल्यों के संदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं । वर्तमान शोध अध्ययन से प्राप्त परिणाम उन शिक्षाशास्त्रियों, अभिभावकों एवं समाज सुधारकों के लिये उपयोगी सिद्ध होंगे, जो देश की भावी पीढ़ी में मूल्यों का विकास एवं मार्गदर्शन करते हैं ।

मूल्यों द्वारा मानवीय आचरण एवं व्यवहारों का मापन होता है। अत: विद्यार्थियों में मूल्यों के ह्रास को देखते हुये विद्यालयी वातावरण को मूल्यों की दृष्टि से अनुकूल बनाया जाये। इसके अतिरिक्त बालकों को मूल्यों के विकास हेतु अभिभावकों को ऐसा पारिवारिक वातावरण प्रदान किया जाना चाहिए, जिससे बच्चों में अनेक मूल्य विकसित हो सकें । इसके लिये अभिभावक बच्चों को स्नेह एवं सुरक्षा प्रदान करें। शिक्षक वर्ग पथ-प्रदर्शक की तरह उनकी समस्याओं का समाधान करते हुये मित्रवत् (आचरण) व्यवहार करें ।

अत: शिक्षकों को चाहिये कि बालकों में मूल्यों के विकास हेतु कक्षा में विद्यार्थियों के लिये सामूहिक शिक्षण, वाद-विवाद प्रतियोगिता एवं खेलों, प्रार्थना, सभाओं, जयन्ती पर्व, नाटक, गीत, राष्ट्रीय पर्व, सामाजिक पर्व, वार्षिकोत्सव, छात्र संसद, सहकारी भंडार संचालन, अभिभावक सम्पर्क, पुस्तकालय, आकाशवाणी, दूरदर्शन, समाचार पत्र, पत्रिकायें, चलचित्र आदि के द्वारा विकास करें ।

इस प्रकार बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए उनमें मूल्यों का बोध एवं विकास होना आवश्यक है। वर्तमान समय में इन मूल्यों की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि मूल्यपरक शिक्षा ही विद्यार्थियों में मूल्यों का विकास करके समाज में सुख एवं शान्ति स्थापित कर सकती है। अत: शिक्षा द्वारा बालकों को मूल्यों का बोध कराकर विकास भी किया जाना वांछनीय (उचित) है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

अमर उजाला (2011): *नैतिक मूल्यों का हो हरा पतन,* आगरा संस्करण, 29 जनवरी पृ.सं. 6

अमर उजाला (2011): *हमें समाज के ऋण को चुकाना होगा* कुलपति डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय आगरा: आगरा संस्करण 17 जनवरी पृ.सं. 7

कपिल, एच. के., *सांख्यिकी के मूल तत्व,* विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा - 3

कपूर, अर्चना (2009) : *पारिवारिक परिवेश का बालक एवं बालिकाओं के मूल्य पर प्रभाव* भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष-28 अंक-1, जनवरी-जून, पृ.सं. 95 से 102,

कुमार, अनिल एवं सिंह सारनाथ (2008): *माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं के जीवन मूल्यों की तुलना,* भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष - 27; अंक-2; जुलाई दिसम्बर, पृ.सं. 43-48

कुमार, प्रदीप एवं सत्संगी नन्दिता (2010): *एन एनालिटिकल स्टडी ऑफ वैल्युज इन साइंस टैक्स्ट बुक एट अपर, प्राइमरी,* डी.ई. आई फोइरा थर्ड एनुअल इश्यु: जनवरी: पृ.सं. 107-108

कुमारी, साधना (2003) *सरस्वती शिशु मन्दिर तथा पब्लिक स्कूल में अध्ययनरत विघार्थियों के*

नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन, एम.एड. लघु शोध प्रबन्ध, डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालयय आगरा।

गैरिट, एच. ई. (1985) : *स्टेटिस्टिक इन साइक्लोजी एण्ड एजूकेशन मुम्बई* : वकील्स फीकर एण्ड साईमोन्स लिमिटेड।

भदौरिया, कामिनी एवं निगम दिव्यशिखा (2008) *कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन,* डी.ई.आई. फोइरा, दयालबाग आगरा पृ.सं. 42-43 सेकैण्ड एनुअल इश्यु, जनवरीय

सक्सेना, सरोज- *शिक्षा के दार्शनिक व समाजशास्त्रीय आधार,* पृ.सं. 259, 265-269,278

सत्संगी पूजा एवं साहनी (2009) : *विद्यार्थियों के मूल्यों एवं समायोजन के संबंध का अध्ययन,* डी. ई.आई. फोइरा, सेकैण्ड एनुअलय इश्यु जनवरी, पृ.सं. 62-63

सिंह, नीतू एवं शर्मा, रमा (2010): *उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर व्यक्तिगत मूल्यों एवं व्यावसायिक आकांक्षाओं का प्रभाव,* डी.ई. आई.-फोइरा, थर्ड एनुअल इश्यु जनवरी, पृ.सं. 57-58

शैरी, जी.पी. एवं शर्मा, आर.पी. (1972): *मैन्युअल फॉर व्यक्तिगत मूल्य प्रश्नावली* (PVQ) आगरा: नेशनल साइकोलोजीकल कॉरपोरेशन.

यादव, नीतू एवं साहू, के.सी. (2010): *ए स्टडी ऑफ ट्रेडीशनल एण्ड मॉडर्न वैल्यू कन्फिलक्ट एमंग मिडिल क्लास कॉलेज गोइंग गर्ल्स,* भारतीय शिक्षा शोध, पत्रिका वर्ष-29, अंक-2, जुलाई-दिसम्बर, पृ.सं. 47-53

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 19, अंक 1, अप्रैल 2012

शोध संवाद टिप्पणी

सुविधाभोगी और सुविधावंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों की नैराश्य, आत्मसंप्रत्यय एवं विद्यालय निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

जितेन्द्र कुमार गोयल*

आज का बालक कल के समाज का उत्तरदायी नागरिक हैं। समाज को उससे बड़ी-बड़ी आशाएं होती हैं। जीवन में आने वाली अनेक चुनौतियों का उसे सामना करना पड़ता है। शैक्षिक दृष्टि से इस समस्या का बहुत अधिक महत्व है। शिक्षा काल में यदि अनुशासनहीन अथवा तोड़-फोड़ वाले विद्यार्थियों को रचनात्मक कार्यों में लगा दिया जाये तो उनका विकास समाज के हित में हो सकता है। इस शोध के द्वारा किशोरावस्था में होने वाली कुंठा से सम्बन्धित व्यवहार की जांच की जायेगी। इस जांच से किशोर छात्र-छात्राओं में पाये जाने वाले अग्रघर्षी व्यवहार का पता लगेगा जो शैक्षिक प्रक्रिया के आवश्यक परिवर्तन और परिवर्द्धन के लिए सहयोगी होगा।

प्रस्तावना

भारतीय सामाजिक व्यवस्था विश्व की प्रभुत्वशाली सामाजिक व्यवस्थाओं में से एक है। भारतीय सामाजिक जीवन विशिष्ट संस्कृति, विविधता, एकता, अनुपमता एवं प्राचीनता के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत का सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश भी अनेकताओं और बहुरूपताओं से भरा पड़ा है। परन्तु फिर भी भारतीय जीवन व संस्कृति की अनेक अभिव्यक्तियों के पीछे आत्मा की एकता विद्यमान है। इस एकता व विविधता ने ही भारतीय समाज को निरन्तरता प्रदान की है। सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर स्वतंत्र भारत की

* शोध छात्र (शिक्षा संकाय), लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारतीय कला, धर्म, समाज व्यवस्था में सदैव ही सात्विकरण और सम्मिश्रण की प्रक्रिया के कारण निरन्तरता बनी रही है।

समाज में वर्गों की एक श्रेणी होती है, जिसमें कुछ वर्ग ऊपर, कुछ वर्ग मध्यम एवं कुछ वर्ग निम्नतम स्थान पर होते हैं। उच्च वर्ग के लोगों की सामाजिक प्रतिष्ठा एवं शक्ति अन्य वर्गों की तुलना में सर्वाधिक होती है, और उसके सदस्यों की संख्या भी बहुत कम होती है। निम्न वर्ग के सदस्यों की संख्या सबसे अधिक होती है, निम्न वर्ग की आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण वे कई प्रकार की सुविधाओं को प्राप्त नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार इन तीनों वर्गों की सम्मिलित संरचना एक पिरामिड की भांति होती है, जिसके धरातल पर निम्न वर्ग होता है। क्योंकि इनकी संख्या अधिक होती है और शिखर पर धनी वर्ग स्थान लेता है क्योंकि इनकी संख्या कम होती है। भारत में लगभग 36 प्रतिशत लोग निम्न वर्ग के हैं, जो गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करते हैं। जबकि लगभग 5 प्रतिशत लोग ही ऐसे है जो विभिन्न प्रकार के संसाधनों से सम्पन्न हैं।

अत: सुविधा भोगी एवं सुविधा वंचित वर्ग वर्तमान भारतीय समाज में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उपर्युक्त दोनों वर्गों की महत्ता को देखते हुये अनुसंधानकर्ता ने दोनों वर्ग के किशोर बालकों के समक्ष समायोजन, नैराश्य एवं आत्मसम्प्रत्यय की क्या समस्या है? नैराश्य तथा आत्मसम्प्रत्यय का शैक्षिक निष्पत्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है? आदि बातों का अध्ययन करने का निर्णय लिया है।

शोध की आवश्यकता एवं महत्व

20वीं, शताब्दी के अंतिम दो दशक विकास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ज्ञान के विस्फोट के साथ आज मानव व्यवहार की प्रक्रिया को उसकी रुचि, कार्यकुशलता तथा योग्यता आदि के साथ आबद्ध कर उसका वैज्ञानिक रूप में अध्ययन किया जाने लगा है। आज व्यक्ति के व्यक्तित्व, आत्मसम्प्रत्यय तथा समायोजन का प्रश्न महत्वपूर्ण है। प्रारम्भिक बाल्यकाल से अंत तक जो निराशाएँ आती हैं, उन निराशाओं का सामना व्यक्ति किस प्रकार करता है? निराशा का प्रभाव व्यक्ति के जैविक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, नैतिक व्यक्तित्व तथा समायोजन पर किस प्रकार पड़ता है? यह समायोजन सही रूप से तभी सम्भव हो पायेंगे जब बालक को प्रारम्भ से ही सही दिशा प्रदान की जाये।

आज का बालक कल के समाज का उत्तरदायी नागरिक है। समाज को उससे बड़ी-बड़ी आशाएं होती हैं। जीवन में आने वाली अनेक चुनौतियों का उसे सामना करना

पड़ता है। अत: सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों के नैराश्य, आत्मसम्प्रत्यय एवं विद्यालय निष्पत्ति का प्रश्न शोधकर्ता की दृष्टि में महत्वपूर्ण हो जाता है।

किशोरावस्था तक पहुँचते-पहुँचते बालक के मन में स्वत: ही यह प्रश्न उठता है कि ''मै क्या हूँ? मुझे भावी जीवन में क्या करना है? क्या बनना है?'' आदि। अधिकांश किशोरों के मस्तिष्क में यह प्रश्न समय-समय पर उठते हैं, परन्तु अधिकांश को इसका कोई निश्चित व ठोस उत्तर प्राप्त नहीं होता है। इसका कारण उन्हें उचित परामर्श प्राप्त नहीं होना भी है। फिर भी अपनी सीमा व शक्ति के अनुसार कुछ योजना बनाते हैं, परन्तु जीवन में घटने वाली अनेक प्रकार की घटनाएँ तथा सम-विषम परिस्थितियाँ आदि उसे प्रभावित करती हैं। अब उसका व्यवहार उसके आंतरिक आवेगों, आवश्यकताओं तथा स्व सोच पर आधारित होता है।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता ने सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों के नैराश्य, आत्मसम्प्रत्यय एवं विद्यालय निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करने का निर्णय लिया है।

समस्या कथन

सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर-विद्यार्थियों के नैराश्य, आत्मसम्प्रत्यय एवं विद्यालय निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

उद्देश्य

(1) सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों के नैराश्य का अध्ययन करना।

(2) सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों के आत्मसम्प्रत्यय का अध्ययन करना।

(3) सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों की विद्यालय निष्पत्ति का अध्ययन करना।

(4) सुविधा भोगी समूह के विद्यार्थियों की नैराश्य एवं आत्मसम्प्रत्यय के मध्य सार्थक अंतर ज्ञात करना।

(5) सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों के नैराश्य व आत्मसम्प्रत्यय के मध्य सार्थक अंतर ज्ञात करना।

शोध की परिकल्पनाएं

(1) सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों के नैराश्य में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

(2) सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों के आत्मसम्प्रत्यय में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

(3) सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों की विद्यालयी निष्पत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

(4) सुविधाभोगी समूह के किशोर विद्यार्थियों की नैराश्य एवं आत्मसम्प्रत्यय के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है।

(5) सुविधा वंचित समूह के किशोर-विद्यार्थियों के आत्मसम्प्रत्यय तथा नैराश्य के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सीमांकन

वित्त परिस्थितियों व समय के अभाव के कारण अनुसंधानकर्ता ने अपने अध्ययन को निम्नांकित सीमाओं में रखा है।

(1) क्षेत्र – अध्ययन उत्तर प्रदेश राज्य के इटावा जिले तक सीमित है। इटावा जिले की भरथना तहसील को अध्ययन के लिए चुना गया है।

(2) संख्या – कुल 200 छात्र तथा छात्राओं को न्यादर्श के रूप मे चयनित किया गया है, जिसमें 100 छात्र-छात्राएं सुविधा भोगी समूह की व 100 छात्र-छात्राएं सुविधा वंचित समूह की हैं।

(3) आयु वर्ग – आयु वर्ग के अन्तर्गत 14 से 20 वर्ष तक के छात्र-छात्राओं को सम्मिलित किया गया है।

(4) शैक्षिक स्तर – शैक्षिक स्तर की दृष्टि से उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा 11 की कक्षा के छात्र-छात्राओं का चयन किया गया है।

शोध में प्रयुक्त विधि

शोधकर्ता ने सुविधा भोगी व सुविधा वंचित वर्ग के किशोर विद्यार्थियों के नैराश्य, आत्मसम्प्रत्यय एवं विद्यालयी निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन हेतु विवरणात्मक विधि प्रयोग की है।

शोध में प्रयुक्त जनसंख्या

प्रस्तुत अध्ययन में उत्तर प्रदेश राज्य के इटावा जिले की भरथना तहसील के छात्र-छात्राओं के 5 उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों का चयन किया गया है, जो सम्पूर्ण जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों का प्रतिनिधित्व करते हैं। भरथना तहसील के 100 छात्र तथा 100 छात्राओं का चयन किया गया है।

प्रस्तुत शोध में न्यादर्श का चयन

शोध प्रबंध को प्रस्तुत करने के लिये निश्चित अवधि है। इसके साथ ही अनुसंधान की कार्य क्षमता सीमित एवं लक्ष्य की एक निश्चित परिधि है अत: इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता ने इटावा जिले की भरथना तहसील के 200 छात्र-छात्राओं का चयन किया।

विद्यालय का नाम	छात्रों की संख्या	छात्राओं की संख्या
के.एन.डी. इण्टर कालेज, लखना	20	20
जनता विद्यालय इण्टर कालेज, बकेवर	20	20
बाबूराम सरस्वती इण्टर कालेज, बकेवर	20	20
लोकमान्य रूरल इण्टर कालेज, महेवा	20	20
श्री सोबरन सिंह इण्टर कालेज, चन्दपुरा, बकेवर	20	20

न्यादर्श विधि

प्रस्तुत अध्ययन में केवल 11वीं कक्षा के विद्यार्थियों का चयन किया गया। विद्यार्थियों के चयन हेतु स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन विधि का प्रयोग किया गया है।

शोधकार्य में प्रयुक्त उपकरण : नैराश्य मापनी (एन.एस. चौहान एवं डॉ. गोविन्द तिवारी) आत्म सम्प्रत्यय मापनी (डॉ. राजकुमार सारस्वत)

प्रयुक्त सांख्यिकी : प्रस्तुत शोध कार्य में मूल आंकड़ों का विश्लेषण करने हेतु मध्यमान, मानक विचलन तथा क्रांतिक अनुपात निकाला गया है।

निर्वचन तथा कारक : अनुसंधानकर्ता ने प्रस्तुत अध्याय में सुविधाभोगी समूह व

सुविधा वंचित समूह के किशोर छात्रों में नैराश्य, आत्मसम्प्रत्यय व विद्यालयी निष्पत्ति को जानने का प्रयास किया है। न्यादर्श के रूप में कुल 5 विद्यालयों के छात्र-छात्राओं को चुना गया व छात्रों की संख्या 200 है, जिसमें से 100 छात्र व 100 छात्राएं हैं। सभी छात्र-छात्राओं के प्राप्तांकों का क्रांतिक मूल्य ज्ञात कर 0.05 स्तर पर सार्थकता की जाँच की गयी और उसके आधार पर सुविधाभोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के छात्र-छात्राओं में नैराश्य, आत्मसम्प्रत्यय व विद्यालयी निष्पत्ति का अध्ययन किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण

तालिका-1

सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों की नैराश्य क्षमता की तुलना

विद्यार्थियों के वर्ग	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात-मान (C.R.)	सार्थकता स्तर	
					0.05	0.01
सुविधा भोगी समूह के विद्यार्थी	100	26.71	7.23	2.25	सार्थक अन्तर है।	सार्थक अन्तर नहीं है।
सुविधा वंचित समूह के विद्यार्थी	100	29.08	5.98			

0.01 On Not Significant difference

0.05 On Significant difference

विश्लेषण : तालिका-1 में सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों की सम्पूर्ण नैराश्य क्षमता की तुलना की गयी है। सुविधा भोगी समूह के किशोर विद्यार्थियों का मध्यमान 26.71 तथा सुविधा वंचित समूह के विद्यार्थियों का मध्यमान 29.08 है। मानक विचलन की गणना करने पर सुविधा भोगी समूह के विद्यार्थियों का मानक विचलन 7.23 है व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों का मानक विचलन 5.98 है। दोनों समूह के किशोर विद्यार्थियों का क्रांतिक अनुपात मान 2.25 है। 1.98 स्वतंत्रता अंश पर 0.05 स्तर का मान 1.97 आया है। गणना द्वारा प्राप्त क्रांतिक अनुपात मान 2.25 आया है। जो सारणी के मान से अधिक है। अत:

प्रतिपादित परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। अत: दोनों समूह के किशोर विद्यार्थियों की सम्पूर्ण नैराश्य क्षमता में सार्थक अन्तर है। परन्तु 0.01 पर सारणी मान 2.60 है जिससे गणना द्वारा प्राप्त क्रांतिक अनुपात मान कम है। अत: यह परिकल्पना स्वीकृत होती हैं। इस स्तर पर दोनों समूह के किशोर विद्यार्थियों की सम्पूर्ण नैराश्य क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका–2

सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों की आत्मसम्प्रत्यय क्षमता की तुलना–

विद्यार्थियों के वर्ग	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात–मान (C.R.)	सार्थकता स्तर	
					0.05	0.01
सुविधा भोगी समूह के विद्यार्थी	100	178	26.24	1.74	सार्थक अन्तर है।	सार्थक अन्तर नहीं है।
सुविधा वंचित समूह के विद्यार्थी	100	171.4	27.42			

0.01 On Not Significant difference

0.05 On Not Significant difference

विश्लेषण : तालिका–2 में सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों की सम्पूर्ण आत्मसम्प्रत्यय क्षमता की तुलना की गई है। सुविधा भोगी समूह के किशोर विद्यार्थियों का मध्यमान 178 तथा सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों का मध्यमान 171.4 है। मानक विचलन की गणना करने पर सुविधा भोगी समूह के किशोर विद्यार्थियों का मानक विचलन 26.24 है व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों का मानक विचलन 27.42 है। दोनों समूह के किशोर विद्यार्थियों का क्रांतिक अनुपात मान 1.74 है। 198 स्वतंत्रता अंश पर 0.05 स्तर का मान 1.97 आया है व 0.01 पर सारणी मान 2.60 सारणी में दिया गया है। गणना द्वारा प्राप्त क्रांतिक अनुपात मान 1.74 आया है, जो सारणी के मान से कम है। अत: प्रतिपादित परिकल्पना स्वीकृत

की जाती है। अत: दोनों समूह के किशोर विद्यार्थियों की आत्मसम्प्रत्यय क्षमता में सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-3

सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के विद्यार्थियों की विद्यालय निष्पत्ति के मध्य क्षमता की तुलना

विद्यार्थियों के वर्ग	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात-मान (C.R.)	सार्थकता स्तर	
					0.05	0.01
सुविधा भोगी समूह के विद्यार्थी	100	66.56	21.52	2.82	सार्थक अन्तर है।	सार्थक अन्तर नहीं है।
सुविधा वंचित समूह के विद्यार्थी	100	58.25	20.05			

0.01 On Significant difference

0.05 On Significant difference

विश्लेषण : तालिका-3 में सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों की विद्यालय निष्पत्ति के मध्य क्षमता की तुलना की गई है। सुविधा भोगी समूह के किशोर विद्यार्थियों का मध्यमान 66.56 तथा सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों का मध्यमान 58.25 है। मानक विचलन की गणना करने पर सुविधा भोगी समूह के विद्यार्थियों का मानक विचलन 21.52 है व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों का मानक विचलन 21.05 है। दोनों समूह के किशोर विद्यार्थियों का क्रांतिक अनुपात - मान 2.82 है। 198 स्वतंत्रता अंश पर 0.05 स्तर का मान 1.97 व 0.01 पर सारणी मान 2.60 सारणी में दिया गया है। गणना द्वारा प्राप्त क्रांतिक अनुपात मान 3.50 आया है। जो सारणी के मान से अधिक है। अत: प्रतिपादित परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। अत: दोनों समूह के विद्यार्थियों की विद्यालय निष्पत्ति क्षमता में सार्थक अन्तर है।

तालिका-4

सुविधा भोगी समूह के विद्यार्थियों में नैराश्य व आत्मसम्प्रत्यय के मध्य तुलना

विद्यार्थियों के वर्ग	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात-मान (C.R.)	सार्थकता स्तर	
					0.05	0.01
सुविधा भोगी समूह के छात्रों का कुल नैराश्य	100	148.85	18.93	9.10	सार्थक अन्तर है।	सार्थक अन्तर नहीं है।
सुविधा भोगी समूह के छात्रों का कुल आत्म-सम्प्रत्यय	100	178.26	26.29			

0.01 On Significant difference

0.05 On Significant difference

विश्लेषण : तालिका-4 में सुविधा भोगी समूह के किशोर विद्यार्थियों में कुल नैराश्य तथा कुल आत्म-सम्प्रत्यय की तुलना की गयी है। सुविधा भोगी समूह के किशोर विद्यार्थियों का कुल नैराश्य का मध्यमान 148.85 है तथा सुविधा भोगी समूह के किशोर विद्यार्थियों का कुल आत्मसम्प्रत्यय का मध्यमान 178.26 है। मानक विचलन की गणना करने पर सुविधाभोगी समूह के किशोर विद्यार्थियों के कुल नैराश्य का मानक विचलन 18.93 तथा कुल आत्म-सम्प्रत्यय का मानक विचलन 26.29 है। सुविधाभोगी समूह के किशोर विद्यार्थियों के नैराश्य तथा आत्म-सम्प्रत्यय का क्रांतिक अनुपात मान 9.10 है। 198 स्वतंत्रता अंश पर 0.05 स्तर का मान 1.97 व 0.01 स्तर का मान 2.60 सारणी में दिया गया है। गणना द्वारा प्राप्त क्रांतिक अनुपात मान 9.10 आया है, जो सारणी मान से बहुत अधिक है। अत: प्रतिपादित परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। सुविधा भोगी समूह के विद्यार्थियों के कुल आत्म सम्प्रत्यय व कुल नैराश्य की क्षमता में सार्थक अन्तर नहीं है।

अत: इस स्तर पर सुविधा भोगी समूह के किशोर विद्यार्थियों की कुल नैराश्य क्षमता व कुल आत्मसम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर है।

तालिका-5

सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों में नैराश्य व आत्मसम्प्रत्यय के मध्य तुलना

विद्यार्थियों के वर्ग	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात-मान (C.R.)	सार्थकता स्तर	
					0.05	0.01
सुविधा वंचित समूह के छात्रों का कुल नैराश्य	100	159.08	21.98	3.50	सार्थक अन्तर है।	सार्थक अन्तर नहीं है।
सुविधा वंचित समूह के छात्रों का कुल आत्म सम्प्रत्यय	100	171.4	27.42			

0.01 On Significant difference
0.05 On Significant difference

विश्लेषण : तालिका संख्या-5 में सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों में कुल नैराश्य तथा कुल आत्म सम्प्रत्यय की तुलना की गई है। सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों का कुल नैराश्य का मध्यमान 159.08 है तथा सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों का कुल आत्म-सम्प्रत्यय का मध्यमान 171.4 है। मानक विचलन की गणना करने पर सुविधाभोगी समूह के किशोर विद्यार्थियों के कुल नैराश्य का मानक विचलन 21.98 तथा कुल आत्म-सम्प्रत्यय का मानक विचलन 27.42 है। सुविधाभोगी समूह के किशोर विद्यार्थियों के नैराश्य तथा आत्म सम्प्रत्यय का क्रांतिक अनुपात मान 3.50 है। 198 स्वतंत्रता अंश पर 0.05 स्तर का मान 1.97 व 0.01 स्तर का मान 2.60 सारणी में दिया गया है। गणना द्वारा प्राप्त क्रांतिक अनुपात मान 3.50 आया है, जो सारणी मान से बहुत अधिक है। अत: प्रतिपादित परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। कि सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों के कुल आत्म सम्प्रत्यय व कुल नैराश्य की क्षमता में सार्थक अन्तर नहीं है।

अत: इस स्तर पर सुविधा वंचित समूह के विद्यार्थियों की कुल नैराश्य क्षमता व कुल आत्म-सम्प्रत्यय में उच्च कोटि का सार्थक अन्तर है।

एक उत्तम शोध कार्य की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है, कि उसके निष्कर्ष शोध विधियों कि सम्यक प्रयोग एवं तर्कसंगत व्याख्याओं पर आधारित होते हैं। उनमें वस्तुनिष्ठता होती है। वह अपने निष्कर्ष के द्वारा ही अपने शोध कार्य को अन्तिम रूप प्रदान कर करता है। या यों कहें तो अतिश्योक्ति नहीं होगी कि बिना निष्कर्ष के निकले उसके शोध कार्य को पूर्ण माना जाए।

जिस प्रकार किसी भी कार्य प्रारम्भ करने से पूर्ण उद्देश्यों की आवश्यकता होती है। बिना उद्देश्यों के कोई भी कार्य सफल नहीं माना जा सकता, ठीक उसी प्रकार शोध कार्य के पूर्ण हो जाने पर निष्कर्ष आवश्यक होते हैं और उन्हीं प्राप्त निष्कर्षों के माध्यम से ही शोध कार्य की शैक्षिक उपयोगिता एवं आवश्यक सुझाव दिये जा सकते हैं।

निष्कर्ष

परिकल्पना

1. ''सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों में नैराश्य में कोई सार्थक अंतर नहीं है'' को देखने के लिए क्रांतिक अनुपात मान की गणना की गयी है। नैराश्य से सम्बन्धित आकड़ों को सारणीवद्ध कर क्रांतिक मान की गणना की गयी है जो निम्नलिखित प्रकार से निष्कर्ष प्रदान करते हैं।

   सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के छात्रों के नैराश्य क्षमता में सार्थक अंतर नहीं है, को देखने हेतु क्रांतिक मान की गणना की गयी है। गणना के आधार पर परिकल्पना संख्या-1 स्वीकृत हो गयी है क्योंकि गणना द्वारा प्राप्त भाग 0.01 स्तर पर दोनों समूहों के मध्य सार्थक अंतर स्पष्ट नहीं कर रहा है

2. ''सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों के आत्मसम्प्रत्यय में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' को देखने के लिए क्रांतिक अनुपात मान की गणना की गयी है जो निम्नलिखित प्रकार से निष्कर्षों का स्पष्टीकरण देती है।

   ''सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के छात्रों के आत्मसम्प्रत्यय में कोई सार्थक अंतर नहीं है, को देखने हेतु क्रांतिक मान की गणना की गयी है। गणना के आधार पर परिकल्पना-2 अस्वीकृत की जाती है क्योंकि गणना तालिका संख्या 2 से स्पष्ट है कि गणना द्वारा प्राप्त मान 0.01 स्तर पर दोनों समूहों के मध्य सार्थक अंतर प्रदर्शित नहीं कर रहा है। अत: निष्कर्षत: सुविधा भोगी समूह के छात्रों का आत्म-सम्प्रत्यय अधिक होता है।

3. ''सुविधा भोगी समूह व सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों की विद्यालयी निष्पत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है'' को देखने हेतु क्रांतिक अनुपात मान की गणना की गयी है। तालिका-3 में प्रदर्शित गणना के आधार पर परिकल्पना संख्या-3 अस्वीकृत होती है। तालिका-3 से स्पष्ट है कि गणना द्वारा प्राप्त मान 0.01 स्तर पर दोनों समूह के मध्य सार्थक अंतर प्रदर्शित करती है। अत: निष्कर्षत: सुविधाभोगी समूह के छात्रों की विद्यालयी निष्पत्ति अधिक होती है।

4. ''सुविधाभोगी समूह के किशोर विद्यार्थियों में नैराश्य तथा आत्मसम्प्रत्यय के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है'' को देखने हेतु क्रांतिक अनुपात मान की गणना की गयी है गणना के आधार पर परिकल्पना संख्या-4 को अस्वीकृत किया जाता है क्योंकि तालिका-4 से स्पष्ट है कि गणना द्वारा प्राप्त मान 0.01 स्तर पर सुविधा भोगी समूह के छात्रों में नैराश्य तथा आत्म सम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर प्रदर्शित कर रहा है। अत: निष्कर्षत: सुविधाभोगी समूह के किशोर छात्रों में आत्म सम्प्रत्यय अधिक होता है।

5. ''सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों में नैराश्य तथा आत्मसम्प्रत्यय के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है'' को देखने हेतु क्रांतिक अनुपात मान की गणना की गई है। तालिका-5 के अनुसार गणना करने पर प्राप्त मान 0.01 स्तर पर आत्मसम्प्रत्यय व नैराश्य के मध्य सार्थक अन्तर प्रदर्शित कर रहा है। अत: निष्कर्षत: सुविधा वंचित समूह के किशोर छात्रों में नैराश्य अधिक होता है।

सुझाव

आज के विद्यार्थी कल के भविष्य निर्माता हैं। भविष्य में समाज एवं राष्ट्र का क्या स्वरूप होगा? यह आज के विद्यार्थियों पर निर्भर होगा चूंकि समाज पर राष्ट्र का भविष्य टिका है। अत: राष्ट्र के सपनों को साकार करने के लिये आवश्यक है कि छात्रों में व्याप्त निराशा को दूर करें। इसके लिये अनुसंधानकर्ता ने निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये हैं :

1. देश व समाज को चाहिये कि सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाये जिससे उनका सुसमायोजन हो सके।
2. विद्यालय में भेद-भाव रहित स्वतंत्र वातावरण का निर्माण करना चाहिये। जिससे सुविधा वंचित समूह के किशोर छात्र-छात्राऐं स्वयं को हीन न समझें तथा अपना सर्वांगीण विकास कर सकें।

3. सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों के आत्म विकास हेतु सद्भावना पूर्ण वातावरण तैयार किया जाऐं जिससे वे अपनी आंतरिक एवं बाह्य योग्यताओं एवं परिस्थितियों से पूर्ण परिचित हो सकें।
4. सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों की विद्यालयी निष्पत्ति को प्रभावित करने वाले कारकों को खोजा जाना चाहिये जिससे सुविधा वंचित समूह के बच्चों के शैक्षिक पिछड़ापन को दूर किया जा सके।
5. उच्च विद्यालयी निष्पत्ति हेतु समय-समय पर विद्यालय में निदानात्मक एवं उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिये।
6. सुविधा वंचित वर्ग के किशोर विद्यार्थियों को पाठ्य सहगामी क्रियाओं में अधिक से अधिक भाग लेने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिये, जिससे वे विद्यालय वातावरण में स्वयं का आत्म विकास कर सकें।
7. सुविधा भोगी व सुविधा वंचित दोनों ही वर्ग के किशोर विद्यार्थियों का मूल्यपरक शिक्षा द्वारा नैतिक विकास पर जोर दिया जाना चाहिये।

शैक्षिक निहितार्थ

1. विद्यालय में भेदभाव रहित स्वतंत्र वातावरण का निर्माण करना चाहिये जिससे सुविधा वंचित समूह के किशोर छात्र-छात्रायें स्वयं को हीन न समझें, जिससे उनका सर्वांगीण विकास हो सके।
2. शिक्षक को सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करते रहना चाहिये जिससे उनका शैक्षिक स्तर ऊँचा उठ सके।
3. सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों के लिए विशेष कक्षाओं का आयोजन किया जाना चाहिये जिससे उनका शैक्षिक स्तर ऊँचा उठ सके।
4. सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों की विद्यालय निष्पत्ति को प्रभावित करने वाले कारकों को खोजा जाना चाहिये तथा उनकी समस्याओं का समाधान करना चाहिये जिससे सुविधावंचित समूह के छात्रों के शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर किया जा सके।
5. सुविधा वंचित समूह के किशोर विद्यार्थियों को विद्यालय में होने वाली पाठ्य सहगामी क्रियाओं में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित करते रहना चाहिये, जिससे उनका सामाजिक विकास हो सके।

6. सुविधा वंचित समूहों के किशोर बालकों की शिक्षा एवं समायोजन के लिये छोटे समूहों में उनकी शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है। इससे शिक्षक व्यक्तिगत रूप से ऐसे बालकों के प्रति विशेष ध्यान दे सकेंगे और उनकी समस्याओं का समाधान कर सकेंगे।

संदर्भ ग्रन्थ

सुलेमान मुहम्मद (2011); *उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान*, दिल्ली, मोतीलाल, बनारसीदास पब्लिकेशन।

सिंह अरुण कुमार (2010); *शिक्षा समाजशास्त्र, मनोविज्ञान में शोध विधियाँ*, दिल्ली, मोतीलाल, बनारसीदास पब्लिकेशन।

गुप्ता एस.पी. अल्का गुप्ता (2011); *अनुसंधान संदर्शिका*, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।

शर्मा आर.ए.; *शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया*, मेरठ, आर.लाल बुक डिपो।

गुप्ता एस.पी., अल्का गुप्ता; *उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान*, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।

कपिल एच.के. (2011); *व्यवहारपरक विज्ञानों में अनुसंधान विधि*, आगरा, एच.पी. भार्गव बुक हाउस।

सिंह कर्ण (2008); *अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया*, लखीमपुर खीरी, गोविन्द प्रकाशन।

गुप्ता एस.पी., अल्का गुप्ता (2010); *आधुनिक मापन मूल्यांकन*, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।

पाठक पी.डी. (2009); *शिक्षा मनोविज्ञान*, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन।

जायसवाल सीताराम (1995); *शिक्षा मनोविज्ञान*, लखनऊ प्रकाशन केन्द्र।

गैरिट एस.ई. (1995); *शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग*, नोयडा, कल्याणी पब्लिकेशन।

सुखिया एस.पी. (2001); *शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व*।

वर्मा प्रीति (2001); *मनोविज्ञान व शिक्षा में सांख्यिकी*, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर

गुप्ता एम.एल. (2010); *भारतीय समाज*, आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन

भटनागर सुरेश (2006); *शिक्षण अधिगम विकास का मनोविज्ञान*, मेरठ, सूर्या पब्लिकेशन।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 19, अंक 1, अप्रैल 2012

चिंतक और चिंतन

पाल गुडमैन के चिन्तन की सार्वभौमिक उपादेयता

देवेन्द्र सिंह*

सैद्धान्तिक पृठभूमि

मनुष्य एक सामाजिक सांस्कृतिक प्राणी है। इसलिए इसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध शैक्षिक संदर्भ से होता है क्योंकि सबका विकास मनुष्य करता है लेकिन मनुष्य के सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास शिक्षा द्वारा होता है। इसीलिए शिक्षा को मूलत: मानव जीवन की प्रयोगशाला कहा जाता है। इस दृष्टिकोण से शिक्षा का मूल लक्ष्य व्यक्ति के चरित्र का विकास करना है तो दूसरी तरफ सामाजीकरण, सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक नियंत्रण करना है। अत: शिक्षा सामाजिक रूपान्तरण के लिए किया जाने वाला नैतिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कर्म है जिसमें शिक्षक एवं छात्र परस्पर संवाद व संप्रेषण करते हुए यथार्थ पर चिन्तन और कर्म करते हैं तथा समाज का रूपान्तरण करते हैं। (टेलर–1993)

वर्तमान वैश्विक संदर्भ में कोई भी चिन्तक विश्व के किसी भी कोने में रहकर ऐसा चिन्तन कर सकता है जिसकी सार्वभौमिक अनुप्रयोगात्मक उपादेयता अन्यत्र भी हो सकती है। चिन्तक के सृजनशील गूढ़ चिन्तन के आधार पर शिक्षा में व्याप्त समस्याओं का समाधान आसानी से किया जा सकता है क्योंकि चिन्तन मात्र सैद्धान्तिक अभ्यास नहीं होता है वरन् यह नई शोध समस्याओं के तरफ इंगित करता है। इसीलिए सभी चिन्तक शिक्षा से संबंधित एवं संदर्भित रहे हैं। पाल गुडमैन वैश्विक संदर्भ के ऐसे ही चिन्तक हैं। वैसे तो उनके शैक्षिक विचारों का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित रूप से प्रस्तुतीकरण उपलब्ध नहीं है, लेकिन शोधकर्ता द्वारा साहित्य आधारित पुनरावलोकन के पश्चात् प्रस्तुत शोध आलेख में पाल गुडमैन के चिन्तन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

सामान्य परिचय

पाल गुडमैन एक वैश्विक संदर्भ के प्रख्यात लेखक, चिन्तक, कवि, समाजशास्त्री,

* एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, सतीश चन्द्र कालेज, बलिया (उ.प्र.)
E-mail devendra.singh2192@yahoo.com

दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक एवं शिक्षाशास्त्री रहे हैं। इनका जन्म अमेरिका के न्यूयार्क में 9 सितम्बर 1911 को हुआ था। उनकी माता जर्मन अमेरिकन मूल की थीं। उनके पिता पाल गुडमैन के जन्म के तुरन्त बाद रहस्यमय ढंग से ब्यूनस आइरस चले गये। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा माता के ही देख-रेख में प्रारम्भ हुई। इन्होंने अपना अध्ययन प्रख्यात दार्शनिक जान डीवी के प्रबल अनुयायी मौरिस कोहेन के कुशल निर्देशन में पूर्ण किया। स्नातक के पश्चात् वे किसी ग्रेजुएट कालेज में प्रवेश नहीं ले सके। वे आलोचना, कविता एवं उपन्यास लिखने लगे। वे प्रारम्भ 'द ब्रेक अप ऑफ आवर कैम्प' उपन्यास से किये। इसी क्रम में उन्हें दार्शनिक अवसर प्राप्त हुआ। इस दौरान 1936 में रिचार्ड मैक्केन शिकागो में डीन नियुक्त हो गये। उसी समय वे पाल गुडमैन को अध्यापक नियुक्त कर दिये। पाल गुडमैन के शिक्षा से संबंधित प्रमुख दृष्टिकोण जान डीवी के प्रयोगात्मक (Experimental Approach) उपागम से संदर्भित है, जिन्हें कोहेन एवं परम्परागत दृष्टिकोण मैक्केन और हचिन से सीखा। 1939 में शिकागो में एक छात्र द्वारा पाल गुडमैन पर फायर कर दिये जाने के बाद वे पुनः न्यूयार्क वापस हो लिये। लेकिन न्यूयार्क बौद्धिक समूह में वे विप्लवकारी व विवादित रहे। वे फ्राइड के मनोविश्लेषण से संबंधित रहे। 1940 में वे 'कम्प्लेक्स' (Complex) नाम से मनोविश्लेषण जर्नल प्रारम्भ किये। इसी क्रम में 1950 में जर्मन फ्रेडरिक एस. पेरिस के साथ मिलकर मनोविश्लेषण सम्प्रदाय (School of Psychoanalysis) विकसित किया जिसे गेस्टाल्ट थीरेपी कहा गया। उन्होंने 1950 तक गेस्टाल्ट इंस्टीच्यूट ऑफ न्यूयार्क में लेक्चरर के रूप में कार्य किया।

पाल गुडमैन की शैक्षिक सुधार में गहरी रुचि रही। वे एस. नील एवं समरहिल के काफी नजदीक रहे। 1960 के मध्य में वे निर्विद्यालयीकरण (Deschooling) आन्दोलन के प्रणेता इवान इलिच, जिन्होंने अपनी चर्चित कृति 'डी स्कूलिंग सोसाइटी' के माध्यम से वैश्विक शैक्षिक जगत में हलचल मचा दी थी, के सम्पर्क में आये और कम्यूनिटी ऑफ स्कालर्स (The Community of Scholar) की रचना की। 1967 में पाल गुडमैन के पुत्र मैथ्यू की, जो एक जीवविज्ञानी थे, पर्वतारोही अभियान में आकस्मिक रूप से मृत्यु हो गयी। इस सदमे को पाल गुडमैन सहन नहीं कर सके एवं 60 वर्ष की ही अवस्था में 2 अगस्त 1972 को न्यू हैम्पशायर में हृदयाघात के कारण उनकी मृत्यु हो गयी।

(जूडिस, जान बी.)

पाल गुडमैन की रचनायें

पाल गुडमैन के चिन्तन का धरातल काफी विस्तृत रहा। उनके विचार उनकी प्रमुख अधोलिखित कृतियों के अन्तर्गत स्थापित हैं–

1. लिटिल प्रेयर्स ऐंड फाइनाइट एक्सपीरियन्स
2. स्पीकिंग ऐंड लांग्वेज : डीफेन्स ऑफ पोइट्री
3. एडम ऐंड हिज वर्क
4. कम्पल्सरी मिस-एजूकेशन
5. मेकिंग डू
6. द सोसाइटी आई लिव इन इज माइन
7. ड्राइंग दि लाइन
8. द कम्युनिटी ऑफ स्कालर्स
9. यूटोपियन एसेज ऐंड प्रैक्टिकल प्रपोजल्स
10. ग्रोइंग अप ऐबजर्ड
11. द इम्पायर सिटी
12. द स्ट्रक्चर ऑफ लिटरेचर
13. पैरेन्ट्स डे
14. गेस्टाल्ट थीरेपी
15. दि ब्रेक अप ऑफ आवर कैम्प
16. कम्यूनिटास
17. आर्ट ऐंड सोशल नेचर
18. द फैक्ट्स ऑफ लाइफ
19. न्यू रिफारमेंशन : नोट्स ऑफ ए नियोलिथिक कन्जर्वेटिव
20. पीपुल आर पर्सनेल : डी सेन्ट्रलाइजिंग ऐंड द मिक्स्ड सिस्टम

(www.paulgoodmanfilm.com)

उपरोक्त रचनायें पाल गुडमैन को सार्वभौमिक चिन्तक की श्रेणी में स्थापित करती हैं, लेकिन कम्पल्सरी मिस-एजूकेशन (1964), द कम्यूनिटी ऑफ स्कालर्स (1962), ग्रोइंग अप ऐबजर्ड : प्राब्लम्स ऑफ यूथ इन द आर्गनाइज्ड सिस्टम (1960) एवं गेस्टाल्ट थीरेपी : एक्साइटमेन्ट ऐंड ग्रोथ इन ह्यूमन पर्सनाल्टी (1951) उन्हें वैश्विक शिक्षाशास्त्री, दार्शनिक एवं शिक्षा सुधारक के रूप में स्थापित करती हैं, क्योंकि इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध शिक्षा प्रणाली एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से है।

शैक्षिक विचार

वैसे तो पाल गुडमैन के शैक्षिक विचारों (शिक्षा की अवधारणा, शिक्षा के लक्ष्य, शिक्षण विधि, पाठ्यचर्या, विद्यालय की अवधारणा, अनुशासन, शिक्षक-छात्र सम्बन्ध) का

औपचारिक रूप से क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित रूप से प्रस्तुतीकरण उपलब्ध नहीं है, लेकिन उनकी प्रमुख रचनाओं का साहित्य आधारित पुनरावलोकन के पश्चात् उनके चिन्तन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है, क्योंकि पश्चिमी समाज में जिन मुद्दों को लेकर इवान इलिच ने 'डी-स्कूलिंग सोसाइटी', जोनाथन काजोल ने 'डेथ ऐट ऐन अर्ली एज', कोलिन वार्ड ने 'एनार्की इन ऐक्शन', एवर्ट रेमर ने, 'स्कूल इज डेड' एवं पावलो फ्रेरे ने 'पेडागाजी ऑफ आप्रेस्ड', के माध्यम से उद्वेलित किया है। पाल गुडमैन ने भी अपनी चर्चित रचना 'कम्पल्सरी मिस-एजूकेशन' के माध्यम से अमेरिकन शिक्षा प्रणाली पर चोट किया है एवं शैक्षिक सुधारों पर बल दिया है। उनके शैक्षिक विचार अधोलिखित हैं–

1. पाल गुडमैन अमेरिकन समाज के प्रमुख विप्लवकारी (Anarchist) समसामयिक आलोचक रहे हैं। उनका मानना है कि समसामयिक समाज में विद्यालय में, जनसंचार माध्यमों द्वारा यह नियोजित ढंग से दुष्प्रचार किया जाता है कि जीवन अनिवार्यत: निवैयक्तिक (Depersonalized) एवं नित्यकर्म (Routine) है। यहाँ उन्मुक्तता के लिए, उन्मुक्त यौन के लिए एवं स्वतंत्र भावना के लिए कोई स्थान नहीं है। इसलिए पाल गुडमैन इसे मिस एजुकेशन कहते हैं। शिक्षा में निरन्तर सुधार और परिवर्तन न लाना उसे उन रूढ़ियों एवं परम्पराओं में बांध देना है जिसकी जीवन में प्रासंगिकता अलाभकारी एवं असमायोजनात्मक बन गयी है। पाल गुडमैन ने अपने चिन्तन के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि प्रचलित शिक्षा प्रणाली अप्रासंगिक सिद्ध हो रही है क्योंकि यह समाज एवं व्यक्ति में विलगाव कर रही है। इसलिए प्रचलित शिक्षा समाप्त कर दी जाय एवं पुन: नई पद्धति के द्वारा शिक्षा की व्याख्या की जाये। क्योंकि प्रचलित शिक्षा संस्थाओं से यह भ्रम पैदा होता है कि व्यक्ति केवल स्कूल के माध्यम से ही शिक्षित होता है, जबकि वास्तविकता यह है कि व्यक्ति स्कूल के अलावा घर, परिवार एवं मित्रों के द्वारा शिक्षा प्राप्त कर सकता है।
2. *ग्रोइंग अप ऐबजर्ड* में पाल गुडमैन ने लिंग के आधार पर भी भेद की बात कही है। शिक्षा व उत्पादकता के लिए लड़कियों की तुलना में लड़कों को श्रेष्ठ माना है। लड़कों की शिक्षा को उसने 'खजाना' की संज्ञा दी है। विद्यालय एवं समाज के ऊपर व्यावहारिक एवं लाभप्रद प्रभाव होता है।
3. विद्यालय एवं समाज एक दूसरे के पूरक नहीं हैं। गतिशील समाज की वास्तविकता और उसका सतत् विकास उसकी निरन्तर परिवर्तनशीलता है। पाल गुडमैन का मानना है कि समाज में विकृति के कारण यह बौद्धिकता को हतोत्साहित कर रही

है, यह राष्ट्रवाद को भ्रष्ट बना रही है, यह ललित कला को भ्रष्ट बना रही है। यह विज्ञान को बेड़ियों में जकड़ ली है, यह पशुवत् आचरण के तरफ प्रेरित कर रही है एवं धार्मिक अपराध करने के लिए प्रेरित कर रही है।

4. ग्रोइंग अप ऐबजर्ड के प्रथम अध्याय में नौकरी हेतु तैयार करने हेतु विद्यालयों की भूमिका पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। अशिक्षितों के लिए कोई 'जाब' नहीं होगा। यह स्थिति मानवीय रूप से सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण है। समाज व्यक्ति को नौकरी के योग्य तभी समझता है जब उसे कोई डिग्री या डिप्लोमा प्राप्त हो जाय। इससे उसकी मौलिकता एव सृजनशीलता का विकास नहीं हो पाता है। समाज के जटिल होने के लिए व्यक्ति की स्वयं की शक्ति का ह्रास होता है तथा उसमें मनोवैज्ञानिक हीनता का विकास होता है।

5. पाल गुडमैन के अनुसार, विद्यालय निरर्थक एवं अनावश्यक है क्योंकि वे बच्चों, समाज एवं राष्ट्र का अहित कर रहे हैं। ये वर्ग भेद एवं असमानता की खाई को अधिक चौड़ा एवं गहरा बना रहे हैं। परिणामत: कम्पल्सरी एजूकेशन से कम्पल्सरी मिस-एजूकेशन की तरफ प्रतिमान परिवर्तन होना चाहिए।

6. पाल गुडमैन का मानना है कि व्यक्ति अपने अमूल्य शैक्षिक अनुभवों को विद्यालय के बाहर प्राप्त करता है। अधिगम का मूल लक्ष्य यह होना चाहिए कि व्यक्ति समाज की गतिविधियों में सक्रिय सहभागिता करें, न कि पुस्तक केन्द्रित अधिगम में समय नष्ट करे या सैद्धान्तिक अवधारणाओं को रटने का कार्य करे। इसके लिए पाल गुडमैन शिक्षा को फैक्टरियों, संग्रहालय एवं पार्क में स्थानान्तरित करने पर बल देते हैं। जहाँ छात्र सक्रिय रूप से अपनी शिक्षा पूरी कर सकते हैं। ऐसी शिक्षा अनिवार्य रूप से गैर-अनिवार्य (Non-Compulsory) होगी।

7. पाल गुडमैन प्रचलित शिक्षा प्रणाली की आलोचना करते हुए अनिवार्य विद्यालयी शिक्षा को सार्वभौमिक जाल (Universal Tap) की संज्ञा देते हैं। क्योंकि इस जाल से बाहर आना कठिन है। विद्यालय छात्रों में उन संस्थागत मूल्यों का विकास करते हैं जो उन्हें भौतिक प्रदूषण, सामाजिक विलगाव और मनोवैज्ञानिक हीन भावना की ओर ले जाते हैं। साथ ही साथ विद्यालय समाज एवं व्यक्ति में भ्रम पैदा करते हैं।

शैक्षिक विकल्प (Educational Alternative)

प्रचलित शिक्षा प्रणाली की आलोचना के उपरान्त पाल गुडमैन छ: शैक्षिक विकल्पों के प्रस्ताव पर बल देते हैं। निर्विद्यालयीकरण के प्रणेता इवान इलिच ने जिस प्रकार कहा कि

विद्यालय निरर्थक एवं अनावश्यक हैं क्योंकि वे बच्चों, समाज एवं राष्ट्र का अहित कर रहे हैं। ये वर्ग भेद एवं विषमता की खाई को अधिक चौड़ा व गहरा बना रहे हैं। शिक्षण संस्थायें जिस प्रकार की भी हैं उन सभी को बन्द कर देना चाहिए। शिक्षा संस्थाओं का उन्मूलन आवश्यक है। विकल्प के रूप में समाज को चलाने के लिए कौशल केन्द्र खोले जायें, जहां पर जो जिस योग्य है उसे वैसा ही कार्य दिया जाय, जिन कौशलों की आवश्यकता है उसकी शिक्षा की व्यवस्था की जाय तथा पुराने सभी कार्यकर्ता, कारीगर आदि उन्हें सिखाये। इवान इलिच का मानना था कि स्कूल ने समाज को बहुत बड़ी क्षति पहुँचाई है। इस समय ऐसे अध्यापकों की कमी हो गयी है जो कुशलता सिखायें। इलिच ने कौशल, अभ्यास एवं शिक्षा का नारा दिया। छात्रों को वह कार्य करना है जिन्हें स्कूल बहुत प्रभावहीन ढंग से करते हैं। ठीक इसी प्रकार पाल गुडमैन ने अधोलिखित छः विकल्पों का प्रस्ताव किया है–

1. सीखने पर समाज का कोई नियंत्रण नहीं होना चाहिए। स्कूलों जैसी संस्थायें बनाकर शिक्षा की प्रक्रिया को कुंठित नहीं किया जाना चाहिए। सामान्य बालकों के लिए 7 वर्ष का विद्यालय कार्य एवं साथ में 4 से 7 वर्ष की अच्छे शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए।
2. शहर को ही स्वयं स्कूल के रूप में कार्य करना चाहिए। जैसे–म्यूजियम, पार्क, फैक्टरी, कैंटीन इत्यादि।
3. शिक्षक के रूप में स्टोरकीपर, मेकेनिक एवं ड्रगिस्ट को महत्वपूर्ण भूमिका देकर उपयोगी बनाया जा सकता है।
4. स्कूल जैसी संस्था बनाकर विद्यार्थी पर उपस्थिति का प्रतिबन्ध लगाकर शिक्षा की प्रक्रिया को कुण्ठित नहीं किया जाना चाहिए। कक्षा उपस्थिति को अनिवार्य नहीं किया जाना चाहिए। यदि शिक्षक अच्छे हैं तो कोई बात नहीं। उपस्थिति की अनिवार्यता के नियम से बच्चों का अभिभावकों से विलगाव या अभिभावकतत्व बोध की कमी हो जाती है।
5. नगरीय स्कूल को 20–50 की छोटे इकाइयों में विकेन्द्रित कर देना चाहिए, जिसमें सामूहिक रूप से खेल, विमर्श एवं औपचारिक शिक्षण की व्यवस्था हो जेसे–प्रेक्षागृह एवं व्यायामशाला।
6. बच्चों में आर्थिक निर्भरता हेतु कुछ महीने कृषि फार्म पर भेजने चाहिए। छः बच्चों को समूह में भेजने चाहिए। शर्त यह हो कि बच्चों को किसान भोजन दें, उत्पीड़न न करें।

पाल गुडमैन एवं भारतीय शैक्षिक परिदृश्य

शिक्षा जगत में रूपान्तरण की प्रक्रिया गतिशील है। विचार तथा विचारधारायें चाहे किसी भी देश की एवं किसी भी भाषा की हों, उन्हें उन्मुक्त भाव से ग्रहण करना चाहिए। विद्यालय के बारे में पाल गुडमैन के विचार पाश्चात्य चिन्तक इवान इलिच के विचार से प्रभावित हैं। स्कूल या विद्यालय के बाहर शिक्षा जैसी कोई चीज हो सकती है। इसी प्रकार विप्लवकारी शिक्षाशास्त्री पावलो फ्रेरे ने 'पेडागाजी ऑफ आप्रेस्ड' में कहा है कि विद्यालय में प्रचलित शिक्षा वर्णन के रोग से पीड़ित है। इसलिए शैक्षिक भूमिका का निर्वाह करने में विद्यालय अनुपयुक्त है। पाल गुडमैन का मानना था कि विद्यालय जीवन की मांगों को पूरा करने में अपर्याप्त है। इसलिए वे पूर्णकालिक संस्थापक शिक्षा के विरोधी हैं। पाल गुडमैन (9 सितम्बर 1911–2 अगस्त 1972) का शैक्षिक चिन्तन अत्यन्त ही अमेरिकन समाज की तत्कालीन सामाजिक सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षिक परिस्थितियों का दर्पण है। जिसमें उनका स्पष्ट चिन्तन झलकता है। भारतीय संदर्भ में भी उनके चिन्तन की प्रासंगिकता से इन्कार नहीं किया जा सकता है। भारतीय संदर्भ में भी शिक्षा का मूल उद्देश्य विलुप्त होता जा रहा है। बालकों में समस्या समाधान, सृजनशीलता, आलोचनात्मक मूल्यांकन एवं चरित्र निर्माण का विकास नहीं हो पा रहा है। शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया सिर्फ संज्ञानात्मक पक्ष तक ही सीमित है। सम्पूर्ण शैक्षिक पारिस्थितिकी, अमनोवैज्ञानिक, अति औपचारिक एवं विश्वसनीयता का संकट विद्यमान है। शिक्षा से सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों (सत्य, धर्म, प्रेम, शान्ति, अहिंसा) का सम्बन्ध–विच्छेद सा हो गया है। शिक्षा प्रणाली से गुणात्मकता का पूर्णरूपेण विलोप हो रहा है। इन कारणों से शिक्षा प्रणाली की भूमिका पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। भारतीय शैक्षिक परिदृश्य में आज जो नये संकट पैदा कर रहे हैं उनमें से विश्सनीयता का संकट, मूल्यों का अवमूल्यन, शिक्षा प्रणाली में अभिभावकत्व की कमी, अवांक्षनीयता को निर्बाध रूप से सामाजिक मान्यता, सूचना उन्मुख ज्ञान को वास्तविक ज्ञान का पर्याय मानना, शैक्षिक अवसरों की असमानता, गुणात्मक शिक्षा एवं अधिगम प्रक्रिया का अभाव, उपाधि एवं परीक्षा केन्द्रित शिक्षा प्रणाली का वर्चस्व आदि हैं। (सिंह 1998)

भारतीय शिक्षा प्रणाली में नये संकटों के कारण पूरी शैक्षिक पारिस्थितिकी प्रभावित हो रही है। शिक्षण संस्थाओं की मात्रात्मक संख्या में तो वृद्धि हो रही है, लेकिन गुणात्मक पक्ष अप्रभावित है। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त प्रतिक्रियाओं एवं टिप्पणियों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय शैक्षिक संदर्भ पर पाश्चात्य औद्योगिक समाज की शैक्षिक दुर्बलताओं का आधिपत्य होता जा रहा है। भारतीय संदर्भ में जिन बिन्दुओं को गाँधी, टैगोर, विवेकानन्द, जे. कृष्णमूर्ति,

अरविन्द, गिजुभाई एवं श्री सत्य साईबाबा ने गूढ़ता व सूक्ष्मता से विवेचित किया है, उन्हीं को यूरोप व संयुक्त राज्य अमेरिका की वर्तमान सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक क्षेत्र में पाल गुडमैन ने देखने का प्रयास किया है। पाल गुडमैन की यह अवधारणा प्रासंगिक लगती है कि औद्योगीकृत समाज प्रमाणीकरण एवं अनिवार्य उपस्थिति के कारण व्यापक शैक्षिक लक्ष्य संकीर्ण हो जाते हैं। परिणामत: यह एक निषेधात्मक प्रक्रिया है। लेकिन भारतीय संदर्भ में प्रमाणीकरण और अनिवार्य उपस्थिति के प्रति आकर्षण बना हुआ है। इस संदर्भ में पाल गुडमैन अप्रासंगिक लगते हैं। क्योंकि पूर्णरूपेण निर्विद्यालयीय एवं उपस्थिति का ऐच्छिक होना अव्यावहारिक भी लगता है।

भारत में अभी भी विद्यालय एवं औपचारिक शिक्षा से जनमानस को काफी अपेक्षायें हैं। फिर भी विद्यालयों के शैक्षिक एकाधिकार को शीघ्रता के साथ समाप्त किया जाना चाहिए। पर ऐसा प्रतीत होता है कि आज की जटिल सामाजिक व्यवस्था में स्कूलिंग की संकल्पना वैचारिक एवं काल्पनिक है। फिर भी भारत में भी अति नगरीकृत समाज एवं शैक्षिक सस्थाओं में पाल गुडमैन का चिन्तन अपेक्षाकृत अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है। क्योंकि पूरी शैक्षिक पारिस्थितिकी भारत में भी इलेक्ट्रानिक परिवेश लिये हुए हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

टेलर, एस. (2011); *पाल गुडमैन ऐंड ओरिजिन ऑफ जेस्टाल्ट थीरेपी,* ओकलैण्ड पी.एम. प्रेस।

जूडिस, जॉन बी. (2012) *दि रिलिवेन्स ऑफ पाल गुडमैन,* डब्लूडब्लूडब्लू, ग्रोइंगअपविथ पालगुडमैन. काम

गुडमैन, पाल : (1964); *कम्पल्सरी मिस-एजूकेशन* न्यूयार्क, हॉरिजन प्रेस।

गुडमैन, पाल (1960); *ग्रोइंग अप ऐबजर्ड : प्राब्लम्स ऑफ यूथ इन दि आर्गनाइज्ड सिस्टम;* न्यूयार्क: रैण्डम हाउस।

सिंह, के.एन. (1992); *इवान इलिच के शैक्षिक विचारों की वर्तमान शैक्षिक संदर्भ में प्रासंगिकता,* अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, शिक्षा संकाय का.हि.वि., वाराणसी।

सिंह, देवेन्द्र (1998); *इवान इलिच के शैक्षिक विचार एवं भारतीय, शैक्षिक परिदृश्य,* भारतीय आधुनिक शिक्षा, अक्टूबर 1998, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।

डब्लूडब्लूडब्लू.पालगुडमैन.काम

डब्लूडब्लूडब्लू.पालगुडमैनफिल्म.काम

एजूट्रेक सीरीज (2004); *थिंकर्स आन एजूकेशन,* नई दिल्ली : नीलकमल पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड।